वर्ष १ अंक ३
विक्रम संवत २०७५ अग्रहायण
दिसम्बर २०१८

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

प्रखर चेतना के धनी मानवता के दूत, स्वामी श्रध्दानन्द थे सच्चे देश सपूत!
किये समर्पित निःस्वार्थ वे जीवन का हर कर्म , समझ लिया था महर्षि से जीवन का सब मर्म
गुरुकुल की स्थापना और शुध्दि के कार्य, जीवन भर करते रहे बनकर सच्चे आर्य
लेखक व पत्रकार थे व आजादी के दूत, अमृत पथ के पथिक थे वैरागी भूदूत
जाति, धर्म व देशहित हो गए वे बलिदान, श्रध्दा से लें हम सभी श्रध्दानन्द से सद्ज्ञान

- अखिलेश आर्येन्दु

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

दिसम्बर २०१८

वर्ष—१ अंक—३, अग्रहायण
विक्रम संवत् २०७५
दयानान्दाब्द— १९५
कलि संवत् — ५११९
सृष्टि संवत् —१,९६,०८,५३,११९

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

समन्वय सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(९९६३९७०९४०)

❖

आकल्पन
कुलदीप कुलश्रेष्ठ (दिल्ली)
पी.जी.कोटुरवार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
ए—११,त्यागी विहार, नांगलोई,
दिल्ली—११००४१
चलभाष— ८१७८७१०३३४

अनुक्रम

विषय	पृष्ठ
१ मनुष्य (सम्पादकीय)	०३
२ दलितोद्धार में स्वामी श्रद्धानन्द......	०५
३ वैदिक ज्योति	०७
४ कुम्भीधान्य ही ब्राह्मण है	०८
५ हे राम...	११
६ सुसंस्कार की कठिन डगर पर	१३
७ सांस्कृतिक विस्मृति के भयावह	१६
८ अमर बलिदानी पं रामप्रसाद......	२४
९ सोशल मिडिया : फूल टेंशन......	२६
१० पाती आयी है	२९

ईमेल— aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट—www.aryalekhakparishad.com
फेसबुक https://www.facebook.com/आर्यलेखकपरिषद्

Digital

सम्पादकीय

मनुष्य

मनुष्य को जन्मते ही दो प्रकार की क्षुधा व्याकुल करती है, इस कारण वह रोता है और आशा करता है कि कोई उसकी सहायता करे। कारण यह है कि वह सर्वथा असमर्थ होता है। बिना किसी अन्य की सहायता के वह अपनी भूख नहीं मिटा सकता और जीवित भी नहीं रह सकता। अतः मनुष्य को ऐसे सहायक की आवश्यकता जन्म के साथ ही होती है जो उसकी क्षुधा मिटा सके और जीवित रह सके।

एक भूख उदर की होती है। उदर में बैठा जठराग्नि भोजन मांगता है। दूसरी भूख मस्तिष्क की होती है जहाँ जिज्ञासा अग्नि बैठा हुआ अपना भोजन मांग रहा होता है। उदर के लिए भौतिक दूध चाहिए, मस्तिष्क के लिए 'सत्य' चाहिए और जीवित रहने के लिए शिक्षा और संस्कार चाहिए। अतः नवजात मानव शिशु का पालन पोषण करने वालों के पास आवश्यक पदार्थ और योग्यता होनी चाहिए तभी एक तन–मन से स्वस्थ व्याकुलता रहित व्यक्तित्त्व निर्मित होता है। इसलिए वैदिकों का कहना है कि –**मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद** अर्थात् मनुष्य बनाने के लिए इन तीन कि आवश्यकता होती है, एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य। यही तीन मिलकर एक स्वस्थ मानव का निर्माण करते हैं। उसे उचित आहार–विहार और व्यवहार का परिचय कराते हैं। सृष्टि की आदि में अमैथुनी सृजन विधि से उत्पन्न मनुष्यों को जगत् सृष्टा विधाता ने उक्त तीनों की भूमिका स्वयं निभा कर उत्पन्न किया था और भविष्य के लिए यह दायित्व उन्हीं मनुष्यों को सौंप दिया था। अतः उक्त तीनों उसी भाव से, उसी नीयत से, उसी प्रकार की इच्छा वाले होकर मनुष्य निर्माण कार्य में संलग्न रहने वाले होने चाहिए। इन्हें मनुष्य बनाना होता है क्योंकि मनुष्य को बनाना पड़ता है अन्यथा उसका जन्म ही निष्फल और व्यर्थ हो जाता है। मनुष्य किसे कहते हैं? महर्षि दयानन्द से जानिए– "मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील हो कर स्वात्मवत् अन्यों के सुख–दुख और हानि–लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मानिर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं– कि चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों– उन की रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उस का नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उस को कितना ही दारुण दुख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।"

दयानन्द की क्रान्ति को समझने के लिए उक्त उद्धरण को बार–बार पढ़िए और स्वयं को इस कसौटी पर कसकर देखिए कि आप कितने मनुष्य हैं?

पाठको! दयानन्द का यही मनुष्य वेद वर्णित आर्य है। इसके विपरीत **अकर्मादस्युः अन्यव्रतो अमानुषः** अर्थात् कर्म रहित, अन्यायकारी अमानुष दस्यु है। सोचिये आप दस्यु है या आर्य।

आज न शुद्ध दूध है, न शुद्ध ज्ञान है, न शिक्षा है, न संस्कार। परिणाम स्वरुप राष्ट्र के लोग मूतने, थूकने, गाली देने, झूठ बोलने, घूस लेने, धन हड़पने और बलात्कार तथा अन्याय द्वारा निर्बलों को प्रताड़ित करने में अति कुशल हो गए हैं। इनमे न सामाजिकता है न राष्ट्रप्रेम। शासन – प्रशासन आश्रयहीन, अनाथ और वृद्धजनों के आँसू पोंछने प्रजा को निर्भयता और न्याय देने में पूरी तरह उदासीन हैं। छोटी–छोटी बालिकाओं के साथ धर्माचार्यों और महाबलियों द्वारा हो रहे बलात्कार, किसानों द्वारा हो रही आत्महत्या, न्याय का उपहास देखकर यही कहना है कि ऐसे शासन–प्रशासन को धिक्कार है। मुर्गों, सुअरों, भैसों, गायों तथा जड़ यंत्रो की नस्ल सुधारी जा रही है। मनुष्य की नस्ल की ओर किसी का ध्यान नहीं। महर्षि दयानन्द की क्रान्ति यहीं से प्रारम्भ होती है – '**मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्**'। पाठको! क्या आप अपने दायित्व के प्रति सजग और सक्रिय हैं ?

उक्त दिव्यतायुक्त पुरुष उत्पन्न करने का अर्थ है उत्तम कोटि के मस्तिष्कों का उत्पादन और उनका नियोजन करना। मस्तिष्क जहाँ भौतिक रूप से स्वस्थ, परिपुष्ट और विकसित हो वही आध्यात्मिक रूप से वे सामाजिकता और आत्मोद्येश्य की समझ से भरपूर होने चाहिए।

सामाजिकता का अर्थ है एक दूसरे को सम्हालने का भाव और इच्छा का होना और अन्यों से प्राप्त पदार्थ और सहयोग के बदले में देने के लिए स्वयं के पास कुछ उपयोगी पदार्थों या गुणों का होना जिससे समाज की किसी न्यूनता की पूर्ति होती हो। मनुष्य जन्म के साथ ही अन्य लोगों से लेना प्रारम्भ कर देता है और जीवन पर्यंत कुछ ना कुछ लेता ही रहता है। अतः उसे लेने की आदत पड़ जाती है परन्तु देने में जोर पड़ता है, देने की इच्छा नहीं होती। अतः उस में देय के साथ देने की इच्छा भी होनी चाहिए। इस भाव का प्रचार कि 'मुझे किसी से कुछ भी लेना देना नहीं है' असामाजिक है। लेने वालों से पहले देने वाले यहाँ विद्यमान होते हैं। यदि वे न देवे तो मनुष्य एक दिन भी जीवित नहीं रह सकता। दाताओं की सार सम्हाल और पोषण से ही जीवन फलता फूलता है। सभी सांसारिक सम्बन्ध, रिश्ते, नाते कुछ ना कुछ देने लेने के ही प्रतीक हैं । अतः यह कहना कि 'कोई किसी का नहीं', 'सब रिश्ते नाते झूठे हैं' इत्यादि असामाजिक कथन है। अतः मस्तिष्क दान भाव से युक्त होनी चाहिए । वेद के शब्दों में –

देहि में ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे।
निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा।।

(यजु ३–५०)

अर्थ– तू मुझे दे मैं तुझे दूँ, तुम मुझे सम्हाल मैं तुझे सम्हालूँ। मोल देने योग्य मुझे मोल दे और मैं तुझे दूँ अर्थात् विनिमय या लेनदेन करते हुए पारस्परिक आत्म –पोषण करें।

स्वामी दयानन्द कहते हैं सबको अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए (आर्य समाज का नवाँ नियम) आत्मोद्देश्य की दृष्टि से मस्तिष्क में स्वात्मवत् अन्यों के सुख–दुख और हानि लाभ की समझ या सहानुभूति होनी चाहिए। यदि ऋषि दयानन्द की सोच के मनुष्य बनाए गए होते तो वे कभी छल, कपट धोखाधड़ी, मिलावट और परस्वहरण न करते। अन्याय, अत्याचार, शोषण और पराधीनता न होती। क्या होता ? आर्य समाज होता। मस्तिष्कों की योग्यता या गुणवत्ता के अनुसार मानवी नियोजन करना ही वर्ण व्यवस्था है।

अयोग्यस्तु पुरुषो नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभः।

अर्थात् पुरुष अयोग्य नहीं होता उसका नियोजक दुर्लभ होता है। इसी दुर्लभ का सुलभ करना दयानन्द की समग्र क्रान्ति है। वैदिक कर्मकांड में भिन्न–भिन्न संख्या वाले कपालों पर पूरोडाश पका कर देवों को आहुतियां प्रदान करके इसी मानवीय मस्तिष्क का नियोजन का अभिनय किया जाता है।

इसके बिना समाज का अस्तित्व सम्भव नहीं। समाज के बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए किए गए पुरुषार्थ का यथेष्ट फल प्राप्त नहीं होगा और मनुष्य जीवन व्यर्थ चला जाएगा। समाज के अभाव में पूरोडाश तो पकते हैं पर उनका भक्षण देवों से छीन कर असुर किए जा रहे हैं।

विष्णो हव्यं रक्ष

– वेदप्रिय शास्त्री

प्रार्थना

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा।
मर्य इव स्व ओक्ये।।

– ऋग्वेद० ०१।०६।२१।१३

व्याख्यान – हे सोम सौम्य सौख्यप्रदेश्वर! आप कृपा करके 'रारन्धि, नः हृदि' हमारे हृदय में यथावत रमण करो। जैसे सूर्य की किरण विद्वानों का मन और गाय, पशु अपने २ विषय और घसादी में रमण करते हैं, व जैसे 'मर्यः, इव, स्वे, औक्ये' मनुष्य अपने घर में रमण करता है, वैसे ही आप सदा स्वप्रकाशयुक्त हमारे हृदय (आत्मा) में रमण कीजिये, जिससे हमको यथार्थ सर्वज्ञान और आनन्द हो।।

देवा देवानामपि यन्ति पाथः। (ऋ० ३.८.६) – विद्वानों के मार्ग पर विद्वान् ही चलते हैं।

दलितोद्धारक स्वामी श्रद्धानन्द

- डा0 कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री, देहरादून

स्वामी श्रद्धानन्द का विचार था कि हिन्दुओं में प्रचलित अस्पृश्यता का अभिशाप उनके सम्मान पर एक बट्टा था और इस पाप का दुष्परिणाम सम्पूर्ण राष्ट्र भुगत रहा था। जब कभी राजनैतिक नेता स्वराज्य की माँग रखते थे तो उनके सामने उनके पापों को रख कर उनका मुँह बन्द कर दिया जाता था कि जो लोग अपने ही समाज के एक तिहाई लोगों को गुलाम बनाये हुए हों और उनको पैरों तले कुचल रहे हों, उन्हें विदेशियों द्वारा किये गये अत्याचारों के विरुद्ध शिकायत करने का कोई अधिकार नहीं था। कांग्रेस के सम्पर्क में आये तो उन्हें यह जानकर पीड़ा हुई कि अस्पृश्यता निवारण और दलितोद्धार की ओर कांग्रेस का कोई रुझान नहीं था। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने एक लेख में लिखा है कि वे कांग्रेस के कलकत्ता सम्मेलन में केवल इसलिए सम्मिलित हुए थे कि उन्होंने राष्ट्रीय असेम्बली से यह प्रार्थना की थी कि कांग्रेसी प्रोग्रामों की सूची में अछूतोद्धार के कार्यक्रम को सम्मिलित किया जाय परन्तु दुर्भाग्य से उस प्रस्ताव पर विषय–समिति तक में विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी गई थी। नागपुर के कांग्रेस अधिवेशन से पूर्व महात्मा गांधी मद्रास गये थे। वहां दलित जाति के लोगों ने अपनी स्थिति के सम्बन्ध में इस प्रकार के प्रश्न गांधी जी से किये कि वे हकला गये और उसके बाद स्वराज्य प्राप्ति के लिए यह भी शर्त लगा दी कि 12 मास के अन्दर–अन्दर अस्पृश्यता दूर की दी जानी चाहिए। अगस्त 1921 में स्वामी जी दिल्ली पहुँचे तो उन्होंने देखा कि अस्पृश्यता निवारण का प्रश्न दिन–प्रतिदिन जटिल होता जा रहा था। दिल्ली और उसके आसपास के आर्यसमाज के लोग लगभग 6 वर्षों से दलितों के जीवन में विकास लाने का प्रयास कर रहे थे। जब समाज के इस वर्ग को चन्दा देकर कांग्रेस की सदस्यता लेने के लिए कहा तो वे तैयार नहीं हुए। उनका कहना था कि वे सदियों से तिरस्कार की पीड़ा भोग रहे थे और उसके समाधान के लिए उन्हें ठहरने के लिए कहा जा रहा था। कांग्रेसी चाहते थे कि स्वराज्य की उन्हें शीघ्रता से प्राप्ति हो जाए। अछूतों की दशा को देखते हुए स्वामी श्रद्धानन्द ने दिल्ली के हिन्दुओं को प्रेरणा दी कि वे अछूत जाति के लोगों को अपने कुएँ से पानी लेने की अनुमति दें, परन्तु मुस्लिम सम्प्रदाय के कांग्रेसी उनके कार्य में बाधक बने और स्वामी जी को यह आभास हुआ कि नौकरशाही की दुरभिसन्धियों से अछूत वर्ग को मुक्त कराना आर्यसमाजियों के लिए सम्भव नहीं होगा। संकट की इन परिस्थितियों को देखते हुए स्वामी श्रद्धानन्द ने 9 सितम्बर 1921 को महात्मा गांधी को एक पत्र लिखा जिसमें कहा गया था कि दिल्ली पहुँचने पर स्वामी जी ने यह महसूस किया था कि कांग्रेस के माध्यम से दलित जातियों का उत्थान करना कठिन था। दिल्ली और आगरा के चमार केवल इतना ही चाहते थे कि हिन्दू और मुसलमान दोनों के द्वारा प्रयुक्त कुओं से उन्हें भी पानी भरने दिया जाय। कांग्रेस के लिए केवल इतना करना भी कठिन प्रतीत हो रहा था। एक मुसलमान व्यापारी ने तो यहाँ तक कहा कि चाहे हिन्दू इन लोगों को अपने कुओं से पानी भरने दें, मुसलमान उन्हें ऐसा करने से जबरदस्ती रोकेंगे क्योंकि ये लोग मुर्दा जानवरों का मांस खाते हैं। स्वामी जी का इस पर कहना था कि वे हजारों ऐसे चमारों को जानते थे जो न शराब पीते थे और न किसी तरह का मांस खाते थे। जो मांस खाते थे, उनकी इस गन्दी आदत को आर्यसमाजियों ने छुड़ाया था। स्वामी श्रद्धानन्द ने यह प्रश्न उठाया कि क्या मांसभक्षी हिन्दू और मुसलमान जीते प्राणियों का मांस नोच कर या निगल कर खाते हैं? क्या वे इन जीवों का मांस उनके मरने के बाद नहीं खाते थे? महात्मा गांधी को इस पत्र में याद दिलाया गया था कि नागपुर में उन्होंने कहा था कि 12 मास के भीतर स्वराज्य–प्राप्ति की एक शर्त दलित जातियों को उनके अधिकार दिलाने की होगी तथा उनकी उन्नति सम्पादित करने से पूर्व ही महात्मा गांधी ने यह घोषणा कर दी थी कि यदि 30 सितम्बर

तक विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार को पूरा कर लिया जाता है तो एक अक्टूबर को स्वराज्य प्राप्त हो जाएगा। स्वदेशी वस्त्रों का उपयोग तथा उसका प्रचार अत्यन्त आवश्यक था परन्तु जब तक हमारे साढ़े छह करोड़ दलित लोग ब्रिटिश नौकरशाही की शरण लेते रहेंगे तब तक स्वदेशी का विस्तार भी असम्भव ही होगा। स्वामी श्रद्धानन्द ने पत्र के अन्तिम भाग में कांग्रेस की नीतियों से दुःखी होते हुए कहा था कि वे अपनी सीमित शक्ति से दलित जातियों के उत्थान के कार्य में लगना चाहते थे। वे नहीं समझते थे कि उन तथाकथित अछूत भाइयों के सहयोग के बिना जो स्वराज्य उन्हें मिलेगा, वह भारत राष्ट्र के लिए किसी भी प्रकार से हितकारी होगा। उन्होंने कहा कि वे यह पत्र केवल यह सूचित करने के लिए लिख रहे थे कि अब वे कांग्रेस कार्यकारिणी को आर्थिक सहयोग के लिए नहीं लिखेंगे। अपने सीमित साधनों से ही जो कुछ बन पड़ेगा, वे करेंगे। इस पत्र में दलितों की समस्या के अतिरिक्ति अन्य कई बिन्दुओं पर गांधी जी और कांग्रेस के विचारों से असहमति प्रकट की गई थी। गांधी जी को इस पत्र के द्वारा स्पष्ट रूप से अवगत कराया गया था कि साढ़े छह करोड़ अछूत उनसे पृथक् हो गये थे।

स्वामी श्रद्धानन्द ने 30 जून, 1922 को महामन्त्री अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को एक पत्र लिखा था। इसमें लिखा गया था कि महात्मा गांधी अस्पृश्यता के प्रश्न को सबसे आगे रखते थे। अब श्रद्धानन्द ने यह अनुभव किया था कि दलित वर्गों के स्थिति को सुधारने का कार्य एक अंधरे कोने में डाल दिया गया था। कांग्रेस ने उनके द्वारा पूर्व में दिये गये सुझावों पर उचित निर्णय न लेते हुए एक उपसमिति के गठन की घोषणा की थी जिससे स्वामी श्रद्धानन्द ने असहमत होने के कारण त्यागपत्र दे दिया था।

जाति प्रथा के विरुद्ध संघर्ष करने में वे अग्रणीय रहे। जातपांत–तोड़क–मण्डल के संस्थापकों में से एक मुख्य कार्यकर्ता श्री सन्तराम बी0ए0 ने अपने संस्मरण में लिखा है– ''कुछ मित्रों के साथ मिलकर मैंने सन् 1922 में लाहौर में जातपांत–तोड़क–मण्डल स्थापित किया था। हमें चारों ओर से हतोत्साहित किया जाता था। मुझे पूरी तरह से स्मरण है कि स्थानीय आर्य नेताओं के निष्क्रिय प्रतिरोध के कारण एक वर्ष हमें अपने वार्षिक सम्मेलन के लिए कोई प्रधान मिलना कठिन हो गया था। स्वामी श्रद्धानन्द उस वर्ष लाहौर आर्यसमाज से कुछ अप्रसन्न थे। उन्होंने उसके वार्षिकोत्सव में आने से इन्कार कर दिया। पर जातपांत तोड़क मण्डल की प्रार्थना पर उन्होने हमारा प्रधान बनना स्वीकार करके हमारी मान–रक्षा की थी। सभापति के आसन पर बोलते हुए उन्होंने कहा था–'मुझे पता नहीं था कि आर्यसमाजी लोग जातपांत तोड़ने से इतना भयभीत हैं। आज इस प्लेटफार्म पर एक भी आर्य नेता को न देख मुझे दुःख हो रहा है। मुझे ऐसा पता होता तो मैं गुरुकुल न बनाकर जातपांत तोड़क मण्डल ही बनाता।' उनकी इस अमर वाणी से मण्डल के कार्यकर्ताओं को बड़ा भारी उत्साह मिला था। वे सदा हमारे लिए प्रकाश–स्तम्भ बने रहे। जातपांत तोड़ने के आन्दोलन की कठिनाइयों को देखकर जब भी मेरा उत्साह भंग होने लगता था, उस ज्योति–स्तम्भ से मैं नवजीवन पाने लगता था। उन्होंने उस घोर अन्धकार के समय में जब पंजाब में परदा प्रथा तक को दूर करना कठिन था, अपनी बेटी और बेटों का विवाह जाति भेद को तोड़कर करते हुए आने वाली पीढ़ियों के लिए मार्ग प्रशस्त किया था।''

स्वामी जी दलितोद्धार, शुद्धि, गुरुकुलीय शिक्षा आदि कार्यों में सदैव तत्पर रहे। 'हरिजन' के समान अस्पृश्य कहलाने वाले लोगों के लिए दलित शब्द का प्रयोग करने वालों में वह अग्रणी थे। वे दलितोद्धार के कार्य में इस वर्ग के लोगों के साथ खान–पान आदि का सब व्यवहार सर्वथा खोल देने के पक्ष में थे। उनका विचार था कि अस्पृश्यता के कलंक को हिन्दू समाज के माथे से मिटाना समस्त हिन्दुओं का कर्तव्य है। वे समय–समय पर अपने व्याख्यानों और पत्रिकाओं के माध्यम से दलितोद्धार करने और अस्पृश्यता को जड़ से मिटाने की अपील करते रहते थे। इस अभियान को सफल बनाने के लिए उन्होंने सन् 1913 में दिल्ली में दलितोद्धार–सभा का गठन किया था। स्वामी जी को सन् 1921 में इस सभा का अध्यक्ष बनाया गया था। दिल्ली और आसपास के नगरों में उनके नेतृत्व में हजारों दलितों का उद्धार किया गया था। हिन्दू धर्म छोड़कर अन्य धर्मों में प्रवेश करने से रोकने के अतिरिक्त उनके द्वारा अपने शुद्धि कार्यक्रम में बड़ी भारी संख्या में अन्य धर्मों में प्रविष्ट हुए लोगों

को शुद्ध कर वैदिक धर्म की दीक्षा देकर शुद्ध किया गया था। यही नहीं, उनकी जीवन पद्धति में सुधार लाया गया और उन्हें अन्य हिन्दू जाति के लोगों के समान आदर पूर्वक जीवन जीने का अवसर प्रदान किया गया था। दलितोद्धार के लिए उनकी तीव्र इच्छा का पता उस सन्देश से भी मिलता है जो उन्होंने तार द्वारा जून 1924 में अहमदाबाद में होने वाले कांग्रेस कमीटी के अधिवेशन के अवसर पर भेजा था। इस तार में कहा गया था– ''कृपा करके अखिल भारतीय कांग्रेस कमीटी के प्रान्तीय हिन्दू सभासदों को, जो नौकर रख सकते हैं, कहा जाए कि वे अपनी व्यक्तिगत सेवाओं के लिए जो नौकर रखें, उनमें एक नौकर अवश्य अछूतों में से एक हो। जो ऐसा न कर सकें, वह कांग्रेस के पदाधिकारी न रहे। यदि यह सम्भव न हो तो अस्पृश्यता के प्रश्न को हिन्दू समाज पर ही छोड़ दिया जाए।''

रायसाहब रामविलास शारदा ने अपने संस्मरण में उद्धृत किया है कि स्वामी श्रद्धानन्द ने उनसे अन्तिम भेंट के समय कहा था कि उन्होंने अपना शेष जीवन अछूतोद्धार और शुद्धि संगठन में लगाने का निश्चय किया था जिसके बिना आर्य जाति जीवित नहीं रह सकती है। जीवन के अन्तिम क्षणों तक उन्होंने अपने इस व्रत का पालन किया था। ******************

सत्य को अपना ध्येय बनायें और महर्षि दयानन्द को अपना आदर्श

– स्वामी श्रद्धानन्द

वैदिक ज्योति

ऐसी वैदिक ज्योति जलाएं।

अंधकार अज्ञान मिटा कर,
लोभ स्वार्थ को दूर हटा कर ।
सत्य धर्म की परिभाषा का जन–जन को सन्देश सुनाएं।।
ऐसी वैदिक ज्योति ––––

दलित वर्ग को साथ उठाकर,
ऊँच–नीच का भेद मिटा कर।
अगणित मुरझाई कलियों को, सींच प्रेम से हरित बनाएं।।
ऐसी वैदिक ज्योति ––––

अत्याचारी शोषक दल का,
लम्पटता बर्बरता छल का।
दमन करें निर्भय साहस से, मानवता की लाज बचाएं।।
ऐसी वैदिक ज्योति ––––

दुर्व्यसनों का शीघ्र ह्रास हो,
आध्यात्मिकता का विकास हो।
यथायोग्य धर्मानुसार सब, हम अपने व्यवहार बनाएं।।
ऐसी वैदिक ज्योति ––––

जन–जन का कल्याण करें हम,
आर्य राष्ट्र निर्माण करें हम।
गद्दारी तानाशाही को कुचल पैर से धूल मिलाएं।।
ऐसी वैदिक ज्योति ––––

इन्द्रिय जित शासक सुजान हो,
मनु निर्मित वैदिक विधान हो।
ब्रह्म शक्ति मिल क्षत्र शक्ति से,नितप्रति ही उत्साह बढ़ाएं।।
ऐसी वैदिक ज्योति ––––

बने 'वेदप्रिय' जग यह सारा ,
फहराए ध्वज ओम हमारा।
श्रेष्ठ पुरुष जगती भर के, मिल एक सभी हो जाएं।।
ऐसी वैदिक ज्योति ––––

– वेदप्रिय शास्त्री

कुम्भीधान्य ही ब्राह्मण है

– डॉ रूपचन्द्र 'दीपक'
लखनऊ (उ.प्र.)

जाति और वर्ण के अन्तर को न समझने वाले या समझने वाले जाति और वर्ण के वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और वैश्विक सम्बन्धों और प्रभावों को आमतौर पर नजरअंदाज कर देते हैं। जाति–व्यवस्था की हानियों या वर्ण–व्यवस्था के लाभों को जानकर सर्वहित को देखते हुए महर्षि दयानन्द के बाद आर्यसमाज ने अनेक ऐतिहासिक कार्य किए, लेकिन जन्मना जात–पांत की जड़ें इतनी गहरी और रूढ़ हैं कि उन्हें समूल नष्ट नहीं किया जा सका। हम यह बिना किसी हिचक कह सकते हैं कि धरती पर एक आदर्श समाज और सर्वश्रेष्ठ समाज की स्थापना के बिना वैदिक वर्ण–व्यवस्था सम्भव नहीं है। इसलिए जो लोग चाहते हैं कि धरती पर सर्वश्रेष्ठ और सभी तरह से आदर्श समाज की स्थापना हो, उन्हें प्रतिदिन एक सर्वहितकारी उद्देश्य से कार्य करना होगा। मिशनरी की भावना, जुनून, शुभसंकल्प और सत्साहस के साथ कार्य करने पर यह असंभव सा दिखने वाला कार्य संभव हो सकता है। समाज सुधारक और आर्य लेखक श्री संत राम बी.ए ने जन्मगत जात–पांत को तोड़ने के लिए सारा जीवन लगा दिया था। उन्होंने 'जात–पांत तोड़ो मण्डल' संस्था की स्थापना करके समाजकर्मियों के सामने एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया था जो मिशनरी भावना से कार्य करने वालों के लिए संजीवनी जैसा था। परिवर्तन व्यक्ति के विचारों, समाज, जीवन–शैली, धारणाओं और मान्यताओं में सतत् होता रहता है। लेकिन ज्ञानी और चतुर व्यक्ति इसे अपने अनुसार उपयोग कर लेते हैं और सामान्य व्यक्ति 'जैसा देश वैसा वेश' मानकर उसे उसी रूप में स्वीकार कर लेते हैं। वेद के अनेक मंत्रों में जिस कुम्भी धान्य ब्राह्मण का वर्णन किया गया है, वह उस वर्णगत ब्राह्मण के सम्बंध में है जो तपस्या, ज्ञान, भक्ति और सर्वहित समर्पित जीवन का पर्याय होता है। यह लेख इस अर्थ में नया है कि इससे उन लोगों को अवश्य जानकारी मिलेगी जो यह मानते हैं कि वेद–शास्त्रों में वर्ण और जाति को एक ही अर्थ में प्रयोग किया गया है और जो आज भी जन्म के आधार पर स्वयं को ब्राह्मण मानकर व्यक्ति और समाज में संतुलन स्थापित करने के लिए स्वयं को वैदिक ब्राह्मण होने का अहंकार और भ्रम पाले रहते हैं। आर्य जगत् के महान् आचार्य और लेखक डॉ. रूपचन्द्र'दीपक' का यह लेख वर्ण और जाति की विभिन्न मान्यताओं पर मार्गदर्शन का कार्य करेगा। लेख कैसा लगा, यह तो आपके लिखे पत्र से ही पता चलेगा।

– समन्वय सम्पादक

व्यक्ति और समाज में संतुलन स्थापित करने के लिए वर्ण–व्यवस्था को निर्दोष बनाना होगा। आज जाति–व्यवस्था लागू है और लोग अन्यों का इसी के अनुसार परिचय देते हैं। इसके साथ–साथ वर्ण–व्यवस्था भी आंशिक रूप से लागू है और अनेक लोग अपना परिचय इसी के अनुसार देते हैं। प्रोफेसर लोग अपने को ब्राह्मण मानते हैं, भले ही उच्च वेतन प्राप्त करते हों। जज लोग स्वयं को ब्राह्मण मानते हैं, भले ही अधिकतम सुविधाएँ पाते हों।

उपर्युक्त लोग व्यवसाय की दृष्टि से ब्राह्मण है; किन्तु व्यवसाय एक मात्र कसौटी नहीं है। 'व्यवहारभानुः' में कहा गया हैः– **यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते।**

अर्थात् जिसको कोई पदार्थ धर्म से छुड़ाकर अधर्म की ओर न खींच सके, वह पण्डित या ब्राह्मण कहलाता है। उसका निर्धन होना अनिवार्य तो नहीं है; किन्तु अधिक धन का संसार धर्म से कम ओर अधर्म से अधिक नाता देखा गया हैं। इस प्रकार उपर्युक्त लोग ब्राह्मण हों सकते हैं; किन्तु सच्चा ब्राह्मण तो कुम्भीधान्य ही है, जिसके लिए एक कुम्भ अर्थात् घड़ा या कुठला पर्याप्त स्टोर रूम है।

मनुस्मृति में ब्राह्मण के छः कर्म बताये गये हैं :–

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चौव ब्रह्मणानामकल्पयत्।।

(अध्याय–१,श्लोक–८८)

अर्थात् पढ़ना–पढ़ाना, यज्ञ करना–कराना, दान देना और लेना। यहाँ पढ़ने का शुल्क लेना अभिप्रेत नहीं है। यज्ञ कराने की दक्षिणा लेना अनुमन्य है; किन्तु दक्षिणा माँगना अनुमन्य नहीं है। विद्वान लोग कृपया विचार करें, क्या शिक्षण–शुल्क लेना पूर्णतः शास्त्रविरुद्ध है? अध्यापक धन–लोलुप न हो, यह तो स्वीकार्य है। यदि उसका व्यय उठाने की कोई अन्य व्यवस्था न होतो क्या उसे मितव्ययी रहते हुए सामान्य शुल्क लेना चाहिए? धर्मशास्त्रों में इसकी अनुमति नहीं है। कदाचित् पूरक शास्त्र लिखकर इसका विधान करना उचित होगा ?

ब्राह्मण तो ब्रह्मवित् को कहते हैं अर्थात् (ब्रह्म) वेद का विद्वान और (ब्रह्म) ईश्वर का उपासक। एक व्यक्ति वेद का शुद्ध उच्चारण करता है; किन्तु वेद–पाठ से निवृत होकर सिगरेट पीता है। दूसरे ने संन्यासी के वस्त्र पहने हुए हैं; स्वयं को ईश्वर का भक्त बताता है और गांजा पीता है। तीसरा ब्राह्मण–पुत्र है और चपरासी (अनुसेवक) के पद पर कार्यरत है। ये तीनों स्वयं को ब्राह्मण मानते है; किन्तु गीता ने ब्राह्मण के लक्षण बताये है :–

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।
(अध्याय–१८ श्लोक–४२)

अर्थात् शम, दम, तप, शौच, क्षमा, आर्जव (ऋजुता), ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता, ये सब ब्राह्मण के स्वाभाव–जनित कर्म हैं। इनके अनुसार उपर्युक्त तीनों व्यक्ति ब्राह्मण–वर्ण में नहीं आते। ब्राह्मण वह है जो वेद का विद्वान और ईश्वर का उपासक होकर गीता–कथित लक्षणों से युक्त हो।

ब्राह्मण के लिए संध्या करना भी आवश्यक बताया गया है। पंचमहायज्ञविधिः में **'अग्निहोत्रसंध्योपासनयोः प्रमाणानि'** के अन्तर्गत कहा गया है –

(१) ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य संयोगे संध्यामुपास्ते।
(षड्विंश ब्राह्मण : प्रपाठक–४, खण्ड–५)

(२) उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रंमश्ननुते।।
(तैत्तिरीय आरण्यक–२, प्रपाठक–२, अनुवाक–२)

अर्थात् ब्राह्मण रात्रि–दिवस की दोनों सन्धियों में संध्या–उपासना अवश्य करे। ऐसा करने वाला विद्वान् ब्राह्मण सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होता है।

ब्राह्मण का सामान्य गुण 'विद्या' माना जाता है परन्तु विद्या तो राक्षसों को भी प्राप्त होती रही है। अतः विद्या होना अनिवार्य तो है किन्तु पर्याप्त नहीं है। ब्राह्मण के लिए विद्या के साथ अध्यात्म भी आवश्यक है वेद में कहा गया है –

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।
(यजुर्वेदः अध्याय–४0, मंत्र–१४)

अर्थात् (सच्चा ब्राह्मण) विद्या और अविद्या दोनों का अर्जन करता हुआ अविद्या (भौतिक एवं अपरा विद्या) से दुख तरता और विद्या (अध्यात्म एवं परा विद्या) से मोक्ष को प्राप्त करता है। अध्यात्म विद्या पर बल देते हुए योग दर्शन (पाद–2, सूत्र–32) के व्यास–भाष्य में कहा गया है –

शय्यासनस्थोऽथ पथि व्रजन्वा स्वस्थः
परिक्षीणवितर्कजालः।
संसारबीजक्षयमीक्षमाणः
स्यान्नित्यमुक्तोऽमृतभोगभागी।।

अर्थात् (सच्चा ब्राह्मण) आत्मनिष्ठ योग साधक शय्या या आसन पर स्थित अथवा मार्ग में चलता हुआ, वितर्क–जाल से रहित, संसार के बीजरूपी अविद्या के क्षय को देखता हुआ नित्यमुक्त अमृत भोगने वाला होता है।

इस प्रकार ब्राह्मण–पुत्र होने और विद्या प्राप्त कर लेने मात्र से कोई व्यक्ति 'सच्चा ब्राह्मण नहीं हो जाता; अपितु उसे अनेक गुण–कर्म–स्वभाव का अर्जन करना होता है। मनुस्मृति के अनुसार –

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।।
(अध्याय–२, श्लोक–२८)

अर्थात् पढ़ने–पढ़ाने, सत्यादि नियम पालने, अग्निहोत्रादि करने, ज्ञान–कर्म–उपासना, पाक्षिक यज्ञ करने, संतानपालन, पंचमहायज्ञों और अग्निष्टोम एवं शिल्पविद्यादि यज्ञों के करने से ब्राह्मण–शरीर बनता है।

पाणिनि के सूत्र ५.१.११५ पर महाभाष्य 'ब्राह्मण' के तीन कारक बताते हुए प्रथम दो अर्थात् वेद एवं तप को आवश्यक बताता है।

तपः श्रुतं च योनिश्च एतद् ब्राह्मणकारकम्।

महाभाष्य पुनः कहता है –

एतस्मिन्नार्यावर्ते आर्यनिवासे ये ब्राह्मणाः कुम्भीधान्या अलोलुप। अगृह्यमाणकारणाः किंचिदन्तरेण कस्याश्चिद्विधायाः पारंगतास्तत्र भवन्तः शिष्टाः।।

अर्थात् कुम्भीधान्य ब्राह्मण ही शिष्ट है। दूसरे शब्दों में, सच्चा ब्राह्मण वह है जो विद्वान् और तपस्वी होने के साथ अलोलुप है और उत्तमोत्तम रूप से कुम्भीधान्य है। *********

गुरु माहात्म्य

(प्रश्न) गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

इत्यादि गुरुमाहात्म्य तो सच्चा है? गुरु के पग धोके पीना, जैसी आज्ञा करे वैसा करना, गुरु लोभी हो तो वामन के समान, क्रोधी हो तो नरसिह के सदृश, मोही हो तो राम के तुल्य और कामी हो तो कृष्ण के समान गुरु को जानना। चाहै गुरु जी कैसा ही पाप करे तो भी अश्रद्धा न करनी। सन्त वा गुरु के दर्शन को जाने में पग–पग में अश्वमेध का फल होता है। यह बात ठीक है वा नहीं ?

(उत्तर) ठीक नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और परब्रह्म परमेश्वर के नाम हैं। उसके तुल्य गुरु कभी नहीं हो सकता। यह गुरुमाहात्म्य गुरुगीता भी एक बड़ी पोपलीला है। **गुरु तो माता, पिता, आचार्य और अतिथि होते हैं।** उन की सेवा करनी, उन से विद्या, शिक्षा लेनी देनी, शिष्य और गुरु का काम है। परन्तु जो गुरु लोभी, क्रोधी, मोही और कामी हो तो उस को सर्वथा छोड़ देना, शिक्षा करनी, सहज शिक्षा से न माने तो अर्घ्य, पाद्य अर्थात् ताड़ना दण्ड प्राणहरण तक भी करने में कुछ भी दोष नहीं। **जो विद्यादि सदगुणों में गुरुत्व नहीं है, झूठ–मूठ कण्ठी तिलक वेद–विरुद्ध मन्त्रेपदेश करने वाले हैं वे गुरु ही नहीं किन्तु गड़रिये जैसे हैं।** जैसे गड़रिये अपनी भेड़ बकरियों से दूध आदि से प्रयोजन सिद्ध करते हैं वैसे ही शिष्यों के चेले चेलियों के धन हर के अपना प्रयोजन करते हैं। वे –

दोन – **गुरु लोभी चेला लालची, दोनों खेलें दाव।**
भवसागर में डूबते, बैठ पत्थर की नाव।।

गुरु समझें कि चेले चेली कुछ न कुछ देवें हींगे और चेला समझे कि चलो गुरु झूठे सोगन्द खाने, पाप छुड़ाने आदि लालच से दोनों कपटमुनि भवसागर के दुःख में डूबते हैं। जैसे पत्थर की नौका में बैठने वाले समुद्र में डूब मरते हैं। ऐसे गुरु और चेलों के मुख पर धूड़ राख पड़े। उन के पास कोई भी खड़ा न रहै जो रहै वह दुःखसागर में पड़ेगा। जैसी पोपलीला पुजारी पुराणियों ने चलाई है वैसी इन गड़रिये गुरुओं ने भी लीला मचाई है। यह सब काम स्वार्थी लोगों का है । जो परमार्थी लोग हैं वे आप दुःख पावें तो भी जगत् का उपकार करना नहीं छोड़ते। और गुरु माहात्म्य तथा गुरुगीता आदि भी इन्हीं लोभी कुकर्मी गुरुओं ने बनाई है।

– सत्यार्थ प्रकाश (एकादश समुल्लास)

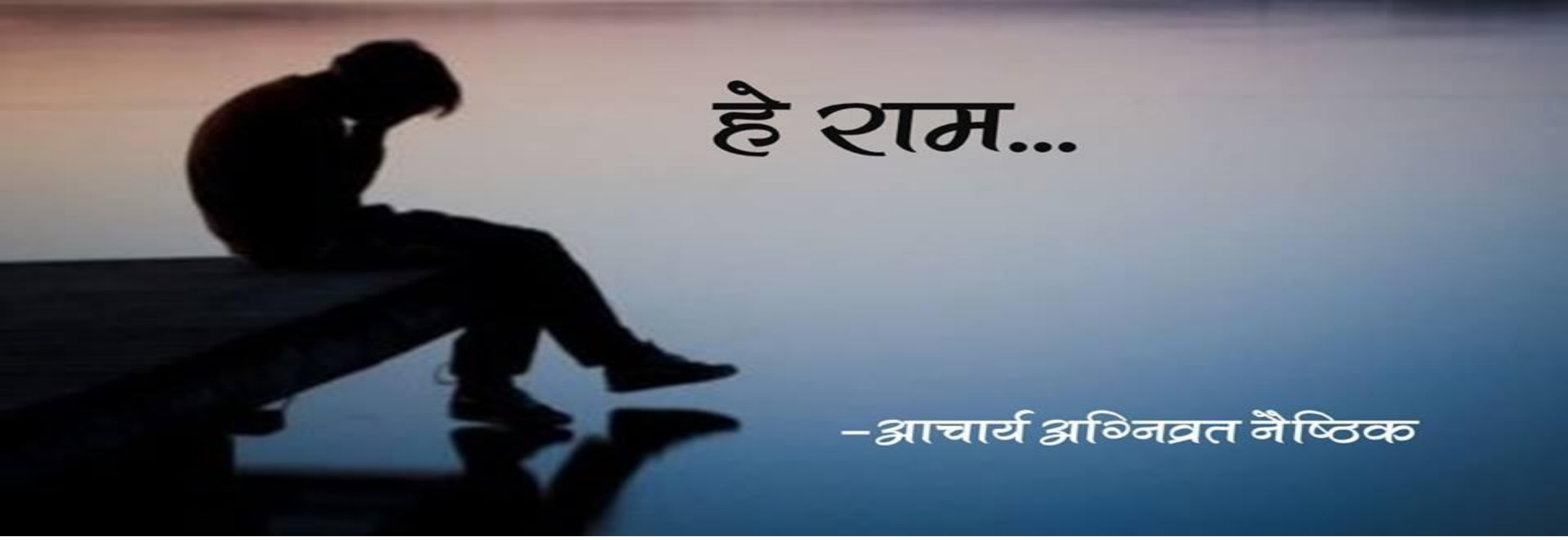

कल दूरदर्शन पर सर्वोच्च न्यायालय (?) के उस निर्णय, जिसमें विवाहेत्तर सम्बन्ध (व्याभिचार) को अपराध मुक्त घोषित किया है का हृदय विदारक समाचार सुनकर दंग रह गया। तभी से बेचैनी रही कि कहीं इस देश को नष्ट करने के पीछे कोई घातक षड्यन्त्र तो नहीं चल रहा है, जिसने न्यायालय, संसद, मीडिया सभी को अपने जाल में फंसा रखा है। कभी 'लिव इन रिलेशन', कभी 'समलैंगिकता', तो अब यह धूर्ततापूर्ण निर्णय। उधर संसद द्वारा कभी शाहबानो तो कभी SC/ST Act पर किए गये फैसले, कहीं गो आदि पशुओं की निर्मम हत्या, तो कहीं भारतीय इतिहास व वेदादि शास्त्रों की अपनो ही द्वारा भर्त्सना।

अहो! यह कैसी स्वतन्त्रता है, जहाँ प्रत्येक आदर्श का दम घोंटा जा रहा है, हर न्यायसंगत बात को आसुरी से भी निकृष्ट कानूनों द्वारा कुचला जा रहा है, जाति व सम्प्रदाय के नाम पर शासकीय व सामाजिक भेदभाव (आरक्षण व छूआछूत) के द्वारा समाज को नष्ट किया जा रहा है। महिला–पुरुष, माता–पिता व सन्तान, निर्धन–धनी, शहरी व ग्रामीण, सबके बीच खाई खोद कर सामाजिक ढांचे को छिन्न–भिन्न किया जा रहा है। इधर कोर्ट लगातार ब्रह्मचर्य व सदाचार की गौरवशाली परम्पराओं को एक–एक करके जीवित जला रहा है।

हे राम! आप तो मर्यादा पुरुषोत्तम एवं वेदवेदांग विज्ञान के महान् ज्ञाता भगवत्स्वरूप थे, परमपिता परमात्मा की पावन गोद में सदैव रमण करने वाले सम्पूर्ण प्राणी–जगत् के परिपालक व रक्षक थे। आपने उस समय के दुष्ट रावण, जो वर्तमान नेताओं, न्यायाधीशों व अन्य कथित प्रबुद्धजनों व कथित राष्ट्रभक्तों से सैकड़ों गुणा श्रेष्ठ था, तथा उसकी बहिन शूपर्णखा को उनकी स्वच्छन्द कामुक प्रवृत्ति के लिए दण्ड दिया था, परन्तु आज हे राम! आपके इस अभागे राष्ट्र में त्रेतायुग के राक्षसों से कई गुने भंयकर व कामी राक्षसों का निर्लज्ज ताण्डव हो रहा है।

आज द्वापर के दुःशासन, दुर्योधन, शकुनि व कर्ण की चौकड़ी द्वारा पतिव्रता रजस्वला धर्मराज युधिष्ठिर की धर्मपत्नी (केवल धर्मराज की, न कि पांचो पाण्डवों की) महारानी द्रौपदी का चीरहरण हुआ था परन्तु आज तो सब ओर यह चौकड़ी कुण्डली मारे दिखाई दे रही है। उस समय तो एक व्यक्ति तो था, जो उन्हें तथा उस समय मूकदर्शक बने महापुरुषों को धिक्कार रहा था। आज वो ऐसा महात्मा विदुर भी नहीं दिखाई दे रहा। कोई चौकड़ी के सदस्य हैं, तो कोई घृतराष्ट्र, तो कुछ एक भीष्म, द्रोण व कृपाचार्य के समान विवश हैं।

उस समय तो वैदिक धर्म के महान् संरक्षक योगेश्वर भगवत्पाद श्रीकृष्ण ने दुष्ट जनों को दण्ड दिया था परन्तु आज वे कृष्ण भी तो कहीं नहीं हैं। आज तो उन योगेश्वर को भी उनके ही नादान भक्तों के द्वारा कन्याओं के साथ नचाया व रास रचाया जा रहा है, उन्हें भी राधा का प्रेमी व गोपियों के साथ यौनाचार करने वाला बताया जा रहा है।

हे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम! तपस्वी महामना शम्बूक बध व गर्भवती देवी सीता जी को घर से निकालने के मिथ्या दोष तो आप पर भी आपके ही नादान भक्तों ने मढ़ दिये परन्तु भगवान् श्री कृष्ण, भगवान् शिव, देवराज इन्द्र, भगवान् ब्रह्मा आदि पूज्य भगवन्तों का चरित्र हनन तो घृणास्पद स्तर तक

इनके ही नादान भक्तों ने पहुँचा दिया है। कोर्ट कभी–कभी उस मिथ्या दोषों को वास्तविक इतिहास मानकर पापपूर्ण निर्णय दे रहे हैं और भविष्य में क्या होगा, कौन जाने ?

हे वैदिक धर्म के महान् प्रतिपालक भगवन् श्री राम! कोर्ट व संसद के फैसलों से मेरे जैसा वेदानुरागी राष्ट्रभक्त एवं सम्पूर्ण विश्व को अपना परिवार समझने वाला बहुत आहत है। कल के फैसले से मेरा शरीर शिथिल हो रहा है, मस्तिष्क चकरा रहा है। मैं जिन कथित प्रबुद्धों को अपने वेदविज्ञान के द्वारा बौद्धिक दासता की बेड़ियों से मुक्त करना चाहता हूँ वे ही मेरे मूर्ख भाई आज कहाँ जा रहे हैं, उन्हें ये नये–नये कानून कुमार्ग पर ले जा रहे हैं। हे राम! नये–नये कानून व न्यायालयों के निर्णय आपके आदर्शों की हत्या कर रहे हैं। देश के रखवाले मूकदर्शक हैं।

हे राम! इस देश की संस्कृति परायी स्त्री को माता समझती थी परन्तु आज यह क्या हो रहा है? जिस पतिव्रत धर्म के कारण भगवती देवी सीता, सती सावित्री, सती अनसूया, देवी रुक्मिणी जैसी महान् नारियां विश्व पूज्य रहीं। जिसके लिए रानी पद्मिनी व रानी कर्मवती जैसी अनेकों क्षत्राणियों ने अपने को अग्नि में आहुत कर दिया, आज हमारे न्याय के मन्दिर उस पतिव्रत व पत्नीव्रत धर्म की चिता जला रहे हैं अर्थात् ये कानूनवेत्ता वा कानून के रखवाले इन देवियों की हत्या कर रहे हैं।

भगवान् मनु, महादेव शिव, भगवान् विष्णु, महर्षि ब्रह्मा, महर्षि भरद्वाज, महर्षि वसिष्ठ, महर्षि अत्रि, महर्षि अगस्त्य, महर्षि व्यास आदि हजारों के निर्मल चरित्र वाले वेदज्ञ वैज्ञानिकों का भारत, इक्ष्वाकु, मान्धाता, हरिश्चन्द्र, रघु, राम, दुष्यन्तपुत्र भरत जैसे अनेक महान् धर्मात्मा राजपुरुषों का भारत, महर्षि परशुराम, महावीर हनुमान, भीष्म पितामह, आद्य शंकराचार्य एवं महर्षि दयानन्द जैसे अखण्ड ब्रह्मचारियों का भारत, महात्मा बुद्ध व महावीर स्वामी जैसे वीतराग पुरुषों व अपाला, गार्गी, घोषा, लोपामुद्रा, मैत्रेयी जैसी विदुषियों का देश आज अपने ही काले अंग्रेज बने पुत्रों से पग–पग पर हार रहा है। वास्तविकता तो यह है कि हमारा प्यारा भारत मर गया है और उसके शव पर खड़े होकर क्रूर, कामी, पापी इंडिया निर्लज्ज नग्न नृत्य कर रहा है।

हे भगवन् राम! आज आपके कथित भक्त, हिन्दू–हिन्दू का जाप करने वाले संगठन, राजनैतिक दल सब मौन हैं, कोई कहीं आन्दोलन नहीं हो रहा। इस फैसले को बदलने के लिए कोई सोच भी नहीं रहा है। बात–बात में आन्दोलन व अराजकता फैलाने वाले आज क्यों शान्तिपूर्वक आन्दोलन नहीं करते? हाँ, अराजकता फैलाना तो राष्ट्र के प्रति द्रोह जैसा होता है, परन्तु शान्तिपूर्वक आन्दोलन करना देश के प्रत्येक जागरूक नागरिक का धर्म है। आज आवश्यकता इस बात की है कि स्वयं को भारतीय, आर्य वा हिन्दू कहने पर गर्व करने वाला (महिला वा पुरुष) राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री व सभी दलों के नेताओं को लगातार पत्र लिखकर दबाव बनाये, जिससे यह पिशाचों जैसा निर्णय वापिस लिया जा सके। कोर्ट से तो केवल पुनर्विचार की अपील ही की जा सकती है, जो सभी सक्षम नागरिकों को करनी ही चाहिए।

मैं तो आप सबको जगा ही सकता हूँ। मैं ऐसे कामी निर्णय करने वालों से कोई याचना नहीं कर सकता।

हे राम! अब कोर्ट में आपके मंदिर बनने पर सुनवाई होनी है। इस देश की कथित रामभक्त जनता की आपके मंदिर बनाने की इच्छा है परन्तु आपके निर्मल चरित्र के विनाश पर उनके हृदय में कोई हलचल नहीं है। यह जनता चित्रों व मूर्तियों की पूजा को ही धर्म समझ रही है और ब्रह्मचर्य, सदाचार, प्रेम, करुणा जैसे वैदिक वा मानवीय मूल्यों से इनको कोई प्रेम नहीं रह गया है। आज कामुकता, हिंसा, वैर, दर्द, प्रतिशोध, अहंकार, द्वेष की अनिष्ट तरंगों से सम्पूर्ण आकाश व मनस्तत्त्व दूषित हो चुका है। इसी के कारण सम्पूर्ण विश्व में भयंकर चक्रवात, तूफान, भीषण गर्मी, दावानल, भूकम्प, सुनामी, बाढ़ व सूखा जैसी आपदाओं के साथ–साथ नाना प्रकार के अपराधों में सतत वृद्धि हो रही है और इन पापों के कारण अभी और अधिक त्रासदी आयेगी।

हे मेरे प्यारे देशवासियो! यदि आपका हृदय पत्थर का न हो और आपके अन्दर श्री राम के प्रति कुछ भी भक्ति शेष बची हो, तो मेरे इस लेख पर कुछ तो विचार करो। कोर्ट के निर्णय पर कुछ तो आंसू बहाओ, अपनी कुम्भकर्णी नींद से कुछ तो जगो, अन्यथा ईश्वर आपको कभी क्षमा नहीं करेगा। हमारे महान् पूर्वजों की स्मृतियां आपको धिक्कारेंगी। उठो! ऋषि–मुनियों के महान् वंशजो! अपने आत्मगौरव को

जगाओ, माँ भारती व वेदमाता के दर्द को पहचानो, अपने धर्म व कर्तव्य को समझो। इसे, यदि कोई कथित प्रबुद्ध (वास्तव में बौद्धिक दास) धर्म, ईश्वर, वेद, ऋषियों व देवों का उपहास करने का दुस्साहस करे और आप उसका तर्कसंगत उत्तर न दे सकें, तो आप ऐसे अहंकारी कथित प्रबुद्ध (वास्तव में बौद्धिक दास) को मेरे पास लेकर आ सकते हैं और वह मेरे से ज्ञान युद्ध कर सकता है।

हे श्री राम! आप तो इस समय मोक्षधाम में परमपिता परमात्मा की अमृतमयी गोद में विचरण कर रहे हैं। इधर आपके नादान भक्त आपको परमात्मा का अवतार मानकर यही सोचते हैं कि अधर्म बढ़ने पर आप अवतार लेंगे। भला, इससे अधिक और क्या अधर्म बढ़ेगा? ये महानुभाव अन्धश्रद्धा से अकर्मण्य होकर सैकड़ों वर्षों से हाथ पर हाथ धरे बैठे सारे पापों को सह रहे हैं। हाँ, यदि कोई इस अन्धश्रद्धा से जगाता है, तो उसको ही अपना शत्रु समझ बैठते हैं। मैं परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि वे इन कथित रामभक्तों में सच्ची ईश्वर पूजा का भाव जगा कर आप श्री राम का सच्चा अनुयायी बनने के साथ–साथ देश के न्यायाधीशों, वकीलों तथा सभी प्रबुद्ध जनों को न्यायशील बनने की सद्बुद्धि व शक्ति प्रदान करें।

****

पंडित नारायण प्रसाद बेताब के उस पिस्तौल के लिए शब्द जिससे स्वामी श्रद्धानंद पर गोली चली

तुझे मालूम है उस वक्त क्या पिस्तौल कहती थी।
अरे शैतान? तेरे मुंह पर वो लाहौल कहती थी।।

उसे अफसोस था मैं पंञ्जये–नापक[1] में आई ।
मुकामे–शर्म[2] है छिपकर जिस पोशाक में आई।।

जल जाता है दिल क्यों दस्ते–गैरतनाके[3] में आई।
गजब है इक बुजुर्गे–नातुवां[4] की ताक में आई।

चला करती हूँ मैं मूजी[5] शरीरों के शरीरों पर।
अधर्मी ने चलाया हाय पीरों पर फकीरों पर।।

मुझे मालूम होता तो यहां हरगिज ना आती मैं।
निशाना अपने लाने वाले बुजदिल को बनाती मैं।।

मिटा है दर्द कातिल जिससे वो गोली न खाती मैं।
हुआ है खून नाहक के सबब सुराक छाती मैं।।

कहेंगी देखिए क्या–क्या मुझे हमजोलियाँ[6] मेरी।
परस्तिशगाह[7] में दाखिल हुई हैं गोलियां मेरी।।

१ गंदे हाथ, ४ निर्बल पुण्यात्मा
२ लज्जा का स्थान ५ अत्याचारी
३ क्रूर हाथ ६ सहेलियां ७ पूजाग्रह

चिन्तन करें

चमत्कारों में विश्वास रखने वाला अथवा परम ऐन्द्रिजालिक प्रदर्शनों में रुचि लेने वाला व्यक्ति ही संसार को किसी मायावी की लीला मानकर चल सकता है। सृष्टि के रंगमंच पर किसी के हाथ की कठपुतली बनकर नाचने वाले हम नहीं हैं। हमारे जीवन का कोई लक्ष्य है, किसी अदृश्य शक्ति से प्रेरणा पाकर हमें कुछ बनना है। संसार को स्वप्न या मिथ्या समझने वाले व्यक्त के लिए तत्त्वज्ञान का कोई अर्थ नहीं। हमें हर समय तत्त्वज्ञान की प्राप्ति में जीवन का पल–पल समर्पित कर देना चाहिए। इससे जीवन का लक्ष्य तो पूरा होगा ही पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक धारा को अपना योगदान दे पाएंगे।

चिन्तन करें ...चिन्तन करें।

सुसंस्कार की कठिन डगर पर...

—डॉ. सीतेश आलोक
नोएडा
चलभाष : 9891357663

हमारी संस्कृति और वैदिक ज्ञान की धारा सृष्टि के अविरल प्रवाह के साथ–साथ चलती आई है। समय के साथ इसमें अनेक उतार–चढ़ाव आए। लेकिन कभी ऐसा नहीं हुआ कि हमारी पहचान पर संकट उपस्थित हुआ हो। इसका कारण वैदिक धारा का वह पुण्य प्रवाह रहा जिसमें तप, ज्ञान, मान, गौरव, स्वाभिमान, आत्मशक्ति, मानवीय मूल्य और सर्वहित की सर्वकामना थी। वैदिक–अवैदिक, पौराणिक–कुरानिक–बाईबिलिक जैसी विचार धाराएं भी समय–समय पर इसे प्रभावित करती रहीं। महाभारत काल के बाद पौराणिक, जैन, बौद्ध, शाक्त आदि जैसी मजहबी धाराएं भी इसी धराधाम पर पोषण पाती रहीं। जिनका प्रभाव आज भी भारत और भारत के बाहर देखा जा सकता है। लेकिन आधुनिकता के नाम पर अपना गौरव, ज्ञान, विचार, सात्विकता, सुचिता, मूल्य और चेतना को गिरवी रखने के कारण हम 'स्व' के स्थान पर 'पर' में ही अपनी प्रगति और विकास समझने लगे। इसी में उलझकर हमने अपना बहुत कुछ खो दिया और खोते जा रहे हैं। हम क्या खो चुके हैं और क्या खो रहे हैं, इसी पर आधारित है महान् साहित्यकार, चिन्तक और सम्पादक डॉ. सीतेश आलोक का यह लेख। लेख पढ़कर हमें यह अवश्य बताएं कि आप डॉ. आलोक के चिन्तन को किस धारा में पाते हैं।

— समन्वय सम्पादक

भारतीय संस्कृति की चर्चा हम सब आए दिन सुनते रहते है... कभी मंचों से, तो कभी चाय–वार्ताओं में या घरों की बैठक में। किन्तु दुर्भाग्य यह है कि हममें से अधिकांश यह नहीं जानते कि हमारी संस्कृति क्या है। इस अज्ञान के पीछे, हमारी सोच की जड़ों में बैठा वह निर्मम अतीत है, जो आठ शताब्दी लम्बी देश की दासता के रूप में हमें भोगना पड़ा। वास्तव में, विदेशी शासन ने कभी हमें यह जानने का अवसर ही नहीं दिया कि हम क्या हैं और हमारी संस्कृति क्या है, हमारी विचारधारा क्या है!

और फिर, लम्बी दासता के बाद देश को मिला भी तो एक ऐसा शासन, जिसने हम पर एक नितान्त नई जीवन–शैली थोपी – बिना सोचे कि तब हमारी पहली अथवा मूलभूत आवश्यकता यह थी कि पहले विदेशी शासन काल में मिले हमारे ज़ख़्मों पर मरहम लगाया जाए और हमारा खोया हुआ आत्मविश्वास तथा आत्मसम्मान हमें लौटाया जाए। हमें हमारी वास्तविक पहचान दी जाए। हमारे वैभव और ज्ञान का परिचय देकर हमें बताया जाए कि हम कभी सशक्त तथा समर्थ भी थे, कि हम पुनः कमर कसकर उठें और वह सब प्राप्त करें जो विश्व के अन्य देश हमारी दासता की अवधि में प्राप्त कर चुके थे।

सर्वमान्य वास्तविकता यह है कि कोई भी शासक देश, गुलाम देश के नागरिकों को तब तक पूरी तरह गुलाम नहीं बना सकता, जब तक वह उनसे उनका आत्म–सम्मान न छीन ले... उनका आत्म–विश्वास न नष्ट कर दे। भारत के विदेशी शासकों ने यही किया। आते ही उन्होंने हमारी संस्कृति को नष्ट किया। हमें दाने–दाने के लिए तरसाकर, कभी इतना अवकाश ही नहीं दिया कि हम अपनी सांस्कृतिक विरासत के विषय में सोचें, अथवा उसे याद करें। हमारी पुस्तकें और हमारे ज्ञान के केन्द्र नष्ट कर दिए गए थे। पुस्कालय जला दिए गए और समाज को कर्म–अकर्म तथा सामर्थ्य का ज्ञान देने वाले गुरुकुल, जड़ से उखाड़ फेंके गए। भूखा–नंगा समाज अपने बच्चों को ज्ञान के लिए भेजता भी तो कहाँ? गुरुजन ज्ञान की सम्पदा बचाते भी तो कैसे, जब न तो उन्हें राजश्रय मिल पाता था और न घर–घर भिक्षा माँगकर भी गुरुकुल को चलाने वाले जिज्ञासु विद्यार्थी थे। हमारी मानसिकता में कूट–कूट कर सैकड़ों वर्ष तक यही भरा गया था कि

'तुम मूर्ख, भटके हुए कुमार्गी, तथा मानव–रूपी पशु हो।'

फिर नये शासकों के शासन ने हमे सुसंस्कृत करने के नाम पर अपनी भाषा दी – इस परम मंत्र के साथ कि तुम्हारा सब कुछ निम्न कोटि का है। अपनी भाषा के कुछ शब्द – जैसे 'कम हियर', 'गेट आउट', 'सिट डाउन', 'कीप क्वाएट', – सिखाए और कोट पहनाकर, गले में टाई लटका दी और सिर पर रखने को एक टोप दे दिया। इस परिधान के साथ, महीने में तीन–चार रुपये वेतन पाकर अंग्रेज़ों का भारतीय नौकर अपने को किसी बादशाह से कम नहीं समझता था। इसमें वह सपरिवार पेट भर खाना खा सकता था और अपने भूखे नंगे पड़ोसियों के बीच 'गुडमार्निंग' 'डैम–फूल' और 'गेट आउट' जैसे शब्द बोलकर सम्मान पा जाता था। सभी लोग उसके भाग्य की सराहना करते थे और उसके–जैसी नौकरी पाने के लिए, अंग्रेज़ी सीखने के लिए दौड़ पड़ते थे। जल्दी ही वे 'संडे–मंडे' सीखने और बोलने लगे और अपने देवताओं को पूजने लगे कि हमें 'साहब' के यहाँ नौकरी दिलवा दो, प्रभु। मैकाले की रणनीति व्यापक प्रभाव डालती जा रही थी। इतना पर्याप्त था इंसान को पालतू कुत्ता बनाने के लिए।

ऐसी दयनीय स्थिति में बस धर्म ही उनका आसरा रह गया था – वह धर्म जिसकी महत्ता के विषय में वे अपने पुरखों से सुनते आए थे। उन्हें धर्म पर विश्वास था। बिना यह जाने अथवा समझे कि धर्म का अर्थ क्या है, धर्म का महत्त्व क्या है, वे अपने भगवान को पुकारते रहते थे। किसी न किसी रूप में उसकी पूजा करते रहते थे। नित नई विपत्तियाँ झेलते हुए भी उन्हें विश्वास था कि एक दिन उनका भगवान ही उन्हें बचाएगा। और जो भी, जैसी भी विपत्ति वह झेल रहे हैं, वह उनके किसी पूर्व जन्म के कर्मों का फल है। वह एक दिन अवश्य दूर हो जाएगी। सब पाप उसी भगवान की कृपा से कट जाएंगे... बस भगवान के आगे रोते रहो, गिड़गिडाते रहो। वह एक दिन अवश्य ही सारे दुखों का अंत करेगा।

धर्म के नाम पर बस यहीं तक उनका ज्ञान था। यही उन्हें अपने पूर्वजों से संस्कार में मिला था। हाँ, उस समय यह ज्ञान और यह संस्कार देने वाले ब्राह्मण भी थे जो अन्य सभी की अपेक्षा कुछ अच्छी स्थिति में थे। उन्होंने अन्य सभी को धर्म का एक और अर्थ समझाया – वह यह कि ब्राह्मण पूज्य होता है। उसे दान देते रहने से भी पापों से मुक्ति मिलती है और सुखों का मार्ग खुलता है। यद्यपि वे स्वयं ही नहीं जानते थे ब्राह्मण होने का अर्थ क्या है? वास्तव में ब्राह्मण को स्वयं ही दान माँगने का अधिकार नहीं होता। उसका पहला कर्त्तव्य यह होता है कि वह बारम्बार वेदों का अध्ययन करता रहे और समाज में शिक्षा का प्रचार–प्रसार करता रहे। उस समय तो ब्राह्मणों को यह भी ज्ञात नहीं रहा था कि वेद कितने हैं और उनमें ऐसा क्या है जो निरन्तर उन्हें पढ़ते रहने का विधान है।

हमें अज्ञानता एवं अपसंस्कृति देकर तत्कालीन शासन का प्रभाव जड़ें पकड़ता रहा। उन्हीं दिनों, विश्व में औद्योगिक क्रान्ति हुई। देश भर में रेल चली, कहीं मोटर गाड़ियाँ भी आईं, बिजली भी बनने लगी। देश में कभी–कभार सिर उठाने वाली चिनगारियों को दबाते रहने के लिए पुलिस दल भी बनने लगे। युद्ध के लिए सेनाएँ भी आवश्यक होने लगीं। इस प्रकार देश के भूखे नंगों को भी गाहे–बगाहे कुछ रोज़गार मिलने लगे। किन्तु उनकी संख्या देश की भूखी एवं बेकार जनसंख्या से बहुत, बहुत कम थी। इंगलैण्ड के कुछ भागों में मिलों के लिए कच्चा माल जुटाने के लिए भी भारत के किसानों को भी कुछ दायित्व मिला।

किन्तु सब जगह शर्त यह भी थी कि उन कर्मचारियों को पूर्णतया अंग्रेज़ी शासन के हित में काम करना होगा। अधिकांश किसानों के लिए भी प्रतिबंध यही था कि वे केवल और केवल वही फ़सल उगाएंगे जिसकी माँग इंगलैण्ड में है। कुछ संदर्भ सर्वविदित हैं कि भारत में उगाया हुआ कपास, मैनचैस्टर की कपड़ा मिलों के लिए ही भेजा जाता था – और वह भी सरकार द्वारा तय की हुई क़ीमत पर और अनेकानेक किसान विवश थे केवल नील की खेती करने के लिए, जो गोरे साहबों के कपड़े चमकाने के लिए भेजा जाता था। कुछ किसानों को यह आदेश था कि चीन को निर्यात के लिए अफ़ीम की खेती करें।

संयोग है कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में होने वाले दो विश्व युद्धों ने भारत में अंग्रेज़ी शासन को कुछ शिथिल किया और उसके साथ ही हमारे स्वतंत्रता आंदोलन ने फिर ज़ोर पकड़ा। अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध

हिन्दुओं से कंधे से कंधा मिलाकर लड़ने वाले मुसलमान, कुछ दशक बाद, देश की स्वतंत्रता की भनक पाते ही, इस धरती पर कब्ज़ा करने के लिए बेचैन होने लगे। पहले उनके मन में यह तर्क था कि अंग्रेज़ों ने देश का शासन मुसलमानों से छीना था, अतः लौटते समय उन्हें आज़ाद भारत की बागडोर मुसलमानों को ही सौंपनी चाहिए। उन्हें भय सताने लगा कि हिन्दुओं पर पाँच शताब्दियों तक शासन करने के बाद इस हिन्दू–बहुल भूमि पर अब हिन्दुओं का शासन हो जाएगा। विश्वभर में प्रजातंत्र आ चुका था और कोई सम्भावना नहीं थी कि देश छोड़ते समय अंग्रेज़ भारत का शासन मुसलमानों को सौंप कर जाएँ। अतः उन्होंने भारत के विभाजन और अलग पाकिस्तान का हठ ठान लिया।

तत्कालीन क्रान्ति काल में गाँधी और नेहरू भारत में नेता के रूप में उभरकर आ चुके थे। उन्होंने विभाजन रोकने के नाम पर मुसलमानों को बहुत छूट दी। इसलाम की 'महानता' के गुण गाए। उन्होंने हिन्दुओं को भी बहुत दबाया और समझाया। हिन्दुओं की उदारता और महानता के गुण गाते हुए यहाँ तक कहा कि ''अगर मुसलमान हमें मार भी डालें तो हमें शान्त रहना चाहिए। हँसते–हँसते अहिंसापूर्वक जीवन बलिदान कर देना ही हमारा धर्म हमें सिखाता है। यही हमारी संस्कृति है।''

किन्तु मुसलमान नेता जानते थे कि विश्व में पसरते प्रजातंत्र में उनका भारत में सत्ता पाना सम्भव नहीं होगा। अतः विभाजन हुआ और पाकिस्तान बना। किन्तु गाँधी–नेहरू प्रभाव के चलते भारत में करोड़ों मुसलमान बसे रहे। उन्हें यहाँ टिके रहने की ही नहीं, हर प्रकार से अपनी शर्तों पर रहने की पूरी छूट दी गई। जहाँ पाकिस्तान इसलामी राष्ट्र बना, वहाँ भारत को प्रजा–बहुल हिन्दू राष्ट्र नहीं बनने दिया गया।

यह भी देश का दुर्भाग्य रहा कि जनता में सरदार पटेल का व्यापक प्रभाव होते हुए भी, गाँधी जी के नेहरू–प्रेम के कारण, देश की सत्ता नेहरू के हाथों में चली गई। देश का दुर्भाग्य कि इंग्लैण्ड–पढ़े, अमीरज़ादे नेहरू को भारतीय संस्कृति का कोई ज्ञान नहीं था। जो कुछ था वह मूलरूप से अंग्रेज़ों द्वारा समझी और लिखी पुस्तकों के आधार पर ही था। और यह तो सर्वविदित है कि अंग्रेज़ों के आकलन में भारत 'सँपेरों और जादू–टोना करने वालों का' देश था। कश्मीर में जन्में और वहाँ के मुस्लिम–बहुल समाज में पले–बढ़े नेहरू को भारतीय संस्कृति के प्रति कोई लगाव भी नहीं था। वे बड़े गर्व से कहते रहते थे – 'मैं शिक्षा से ईसाई, संस्कार से मुसलमान और मात्र संयोग से हिन्दू हूँ।'

देश का एक और दुर्भाग्य, बीसवीं सदी के तीसरे दशक में ही जन्म ले चुका था। रूस और चीन में पनपे और विकसित हुए मार्क्सवाद का बीज भारत में पहुँच चुका था। उसके पास ग़रीबों को लुभानेवाला, मनमोहक, अमीर–विरोधी नारा था। उसे संस्कृति से कोई लेना–देना न कभी था और न आज है। वह यह मूल मंत्र लेकर आया कि संसार में बस अमीर और ग़रीब हैं और देश की सम्पत्ति पर दोनों का समान अधिकार होना चाहिए। अगर ग़रीब एकजुट हो जाएँ तो वे अमीरों से अपना अधिकार छीन सकते हैं।

उनका यह मंत्र अनेक ग़रीब–बहुल देशों में सफल होता रहा था। उन्हें यह देखकर आश्चर्य भी हुआ और आघात भी लगा कि भारत में उनकी विचारधारा आशा के अनुकूल नहीं फैल रही थी। बहुत विचार–विमर्श और माथा–पच्ची के बाद उन्हें ज्ञात हुआ कि यहाँ का ग़रीब अपने संस्कार से भाग्यवादी है। वह मानता है कि 'होइए वही जो राम रचि रखा'। उन्हें सोचना पड़ा कि यह राम कौन है? यहाँ अपनी पकड़ बनाने के लिए उन्हें ग़रीबों का यह विश्वास तोड़ना पड़ेगा। इस निश्चय से उन्होंने रामकथा का अध्ययन किया और अपने विद्वानों से कहा – 'जैसे भी हो, राम की छवि बदलो... घटनाओं की नयी व्याख्या करो, नयी रामायण लिखो... जैसे भी हो राम को खलनायक सिद्ध करो... रावण को महान दिखाओ।' 'वेद पढ़ो, मनुस्मृति पढ़ो और सिद्ध करो कि यहाँ कुछ लोगों के साथ हमेशा अन्याय हुए। बस इसी कारण वे ग़रीब हैं, अपमानित हैं, और उपेक्षित हैं।'

उन्होंने जातिवाद को तूल दिया। ग़ुलामी की शताब्दियों में उपजी अपसंस्कृति को ही भारत की मूल संस्कृति के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने पाया कि मुलसमान भी, अल्पसंख्यक होने के कारण और अपनी साम्प्रदायिक सोच के कारण, हिन्दुओं से घृणा करते हैं। उन्हें पता लगा कि हिन्दू नारी पर, ग़ुलामी के काल में, बड़े अत्याचार हुए और स्वयं अत्याचार का शिकार हिन्दू उनकी रक्षा नहीं कर पाता था। इस कारण महिला

समाज बड़ा दुखी एवं असंतुष्ट है। यह देखकर मार्क्सवाद ने नारी समाज और मुसलमानों को भी 'दलित' कहकर, बहुसंख्यक हिन्दू के विरुद्ध भड़काया।

नयी–नयी रामकथाएँ जन्म लेने लगीं – एक का तो शीर्षक ही था 'रामायण विष वृक्षम्'। सभी के नये निष्कर्ष... कि राम खलनायक थे, उन्होंने सीता की अग्नि परीक्षा ली... किन्तु स्वयं कोई परीक्षा नहीं दी। उन्होंने निर्दोष सीता को वनवास दे दिया। राम के अनेक पत्नियाँ थीं। राम, सोना पाने के लालच में स्वर्णमृग को पकड़ने के लिए दौड़े थे।

और यह भी कि रावण बहुत अच्छा आदमी था। सीता, वन के कष्टमय जीवन से ऊबकर रावण के साथ अपनी मर्ज़ी से भाग गई थीं। रावण के राज में सीता एक वर्ष तक सुरक्षित रहीं। रावण अपनी बहन के अपमान का बदला लेने के लिए सीता को ले गया था... आदि। उन्होंने इस प्रकार की मान्यताएँ फैलाने में सहयोग देने वाले लेखकों, नाटककारों, लोकप्रिय कलाकारों को विदेश में बुलाकर धन एवं अलंकरणों से सम्मानित किया। बच्चों के लिए चिकने कागज़ पर रूसी साहित्य सस्ते दामों पर वितरित किया गया और इस प्रकार नयी पीढ़ी के मन में विष बीज बोने का काम बड़े धैर्य के साथ होता रहा। इसमें तत्कालीन प्रशासन का मौन सहयोग उनके साथ रहा। हाँ, इस दुष्प्रचार से उन्होंने मुसलमानों को दूर ही रखा, क्योंकि वे जानते थे कि मुसलमान को उसकी विचारधारा घुट्टी में पिलाई जाती है। उसके सोच को किसी भी प्रकार बदला नहीं जा सकता। उन्होंने मुसलमानों को यही समझाया कि हिन्दू उससे घृणा करते हैं और उनके राज में उन्हें न कभी सम्मान मिलेगा और न सुख।

इस प्रकार वामपंथ ने अपने प्रभाव क्षेत्र में ग़रीब के साथ ही मुसलमानों और नारी समाज को और नव साक्षरों को भी जोड़कर अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाया।

ऐसे प्रभावों–दुष्प्रभावों के चलते देश का जन मानस कभी सार्थक दिशा नहीं पा सका। देश के नागरिकों को कर्म–अकर्म और सत्कर्म–दुष्कर्म का ज्ञान देने वालों का सर्वथा अकाल रहा। स्वतंत्रतता के बाद प्रशासन ने देश को आर्थिक विकास की योजनाएँ तो दीं किन्तु व्यापक दुष्प्रभावों को रोककर सत्कर्म की ओर प्रेरित करने वाली कोई पहल नहीं की। इसके विपरीत ऐसा सद्ज्ञान देने वाली सभी संस्थाओं को पोंगापंथी और पुरातनपंथी कहकर उनका विरोध ही किया, उन्हें हतोत्साहित ही किया। परिणाम यह है कि आज का युवा, देश की यत्किंचित समृद्धि मे अपना हिस्सा माँगना सीख गया है। उसके लिए लड़ना सीख गया है। अधिक से अधिक पा लेने के लिए छीनना और लूटना सीख गया है। किन्तु श्रम और ईमानदारी का महत्त्व नहीं सीख पाया। धैर्य और उदारमन से देना नहीं सीख पाया। वह चिल्लाकर कहता था कि देश में इतने सारे धनकुबेर हैं, वे कौन–सी मेहनत करते हैं? उन्होंने और उनके पुरखों ने हमें निरन्तर लूट कर ही अपनी सारी सम्पत्ति पाई है।

देश में प्रजातंत्र के बहाने भी, सुसंस्कारों के अभाव में, बड़ा अनाचार हुआ है। सुसंस्कारों के अभाव में प्रजातंत्र स्वयं ही लूट का एक बहुत बड़ा साधन बन गया है, जिसके सामने सम्विधान और न्यायप्रणाली का प्रभाव भी दम तोड़ देता है। जो भी जनता को धैर्य और परिश्रम का मार्ग दिखाए बिना, तुरन्त धन एवं सुविधाएँ देने का सपना दिखा दे – वही उनका नेता बनता चला जाता है। और एक बार राजनीति में सफल होने का मतलब है – धन, मान–सम्मान और बाहुबल... सब एक साथ प्राप्त हो जाना। आज कोई महिलाओं के लिए आवाज़ उठाकर, कोई ग़रीबों के लिए आँसू बहाकर, कोई मुसलमानों की पीड़ा सुनाकर तो कोई मज़दूर के लिए चीख़–चिल्लाकर नेता बनने का जुगाड़ बैठा रहा है। इसके साथ ही सरकारी नौकरी एक बहुत बड़ा आकर्षण बन गई है, जहाँ पैसा है, सुरक्षा है और पेंशन के साथ मौज ही मौज है। लोग उसके लिए लूटकर या खून करके भी पैसा लगाने को तैयार हैं। लड़की वाले सरकारी नौकरी वाले के लिए बड़ा दहेज़ लिए घूमते रहते हैं। समाज में हर किसी को शार्टकट चाहिए।

यह वातावरण सुसंस्कारों के अभाव में बद से बदतर होता चला गया और आज बहुत तेज़ी से, बहुत–बहुत तेज़ी से बिगड़ता चला जा रहा है। इससे बचने के लिए योजनाबद्ध काम, आज से सत्तर वर्ष पहले ही प्रारम्भ होना था। किन्तु तब देश के भाग्य ने हमें गाँधी–नेहरू जैसे अदूरदर्शी नेता दिए। शिक्षा मंत्री के नाम पर देश को मौलाना आज़ाद मिले जो बस अरबी–फ़ारसी के विद्वान थे और भारतीय संस्कृति एवं

जीवन–मूल्यों से सर्वथा अनभिज्ञ थे। वे देश को मार्गदर्शन देते भी तो क्या?

उन परिस्थितियों ने हमें निरन्तर बोझ बनी रहने वाली समस्याएँ ही दीं। उनके प्रभाव स्वरूप ही देश को एक विदेशी नाम मिला – इंडिया। देश को एक अपनी भाषा नहीं मिल पाई। देश को अपना प्रतीक वह ध्वज भी नहीं मिल पाया जिसके तले शिवाजी, महाराणा प्रताप जैसे रण–बाँकुरों ने युद्ध करते हुए अपने प्राण न्योछावर किए थे। तत्कालीन नेताओं के अतिशय मुस्लिम–प्रेम ने देश को मुसलमानों की अतिरिक्त समस्या दी। उनकी अदूरदर्शिता के कारण कश्मीर की विषाक्त समस्या दी, जो आज नासूर बन गई है, और उन सबसे बढ़कर, देश की जनता को संस्कारहीनता मिली।

आज स्थिति में सुधार के लिए आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है, जो कि समय की धारा एवं दिशा को मोड़कर पीछे ले जाने जैसा दुष्कर कार्य है। किन्तु आशा की किरणें अभी शेष हैं। हमारे पास पर्याप्त साधन न सही, दृष्टि है, धैर्य है और मनोबल है।***

सत्य का अखण्ड दूत

मैंने केशवचन्द्र सेन, या लाडली मोहन घोष, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और एनीबेसेन्ट आदि व्याख्याताओं के भाषण सुने हैं। पर मैं सच्चे दिल से कहता हूँ कि जो असर मुझ पर उस रोज के व्याख्यान ने किया और जो फसाहत मुझे उस रोज के सादे शब्दों में मालुम हुई वह अब तक तो दिखाई नहीं दी।......

महाराज (महर्षि दयानन्द) ने सत्य पर बोलना आरम्भ किया। पादरी स्कॉट को छोड़कर पहले दिन के सब अंग्रेज सज्जन विद्यमान थे, कोई आदमी न हिलता था सब चुपचाप एकाग्र हो व्याख्यान सुन रहे थे।

ऋषि ने कहा लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो, कलेक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा। अरे चक्रवर्ती राजा ही क्यों न अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे।

वह वाणी किसी निष्कपट निडर व्यक्ति के हृदय से ही निकल सकती है और उस समय अज्ञान अन्धविश्वास और मूढ़ता के सुदृढ़ दुर्ग को धराशायी करने के लिए इसी की आवश्यकता थी।

– स्वामी श्रद्धानन्द

यदि इस युग का कोई कलाकार ईसा मसीह का चित्र बनाने के लिए अपने सामने कोई माडल रखना चाहे, तो मैं उसे महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के भव्य व्यक्तित्त्व की ओर संकेत करूँगा।

– रेम्जे मैक्डानल्ड (ब्रिटिश प्रधानमंत्री)

सांस्कृतिक विस्मृति के भयावह नतीजे

— संत समीर

भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में विश्व के विद्वानों, विचारकों, अनुसंधानकर्ताओं, इतिहासकारों, संस्कृति—वेत्ताओं और धर्म विश्लेषकों के विचार भिन्न—भिन्न रहे हैं। विदेशी और वामपंथी विद्वानों, दार्शनिकों और इतिहासकारों की दृष्टि अमूमन दुराग्रह—आग्रह के साथ आगे बढ़ती रही। भारत वेद—शास्त्रों, ऋषि—मुनियों और मानव मन को गहराई से समझने वाले मनोवैज्ञानिकों का देश रहा है, वहीं पर महाभारत काल के उपरान्त वर्ण—व्यवस्था और आश्रम—व्यवस्था के धीरे—धीरे अवसान की ओर जाने और जन्मना जाति—व्यवस्था के सुदृढ़ होते जाने के कारण समाज अज्ञानता, शोषण, क्रूरता, अंधविश्वास, पाखंड, गंदी प्रथाओं और कुप्रवृतियों का शिकार होता गया । फिर लगभग एक हजार वर्षों की विदेशी गुलामी के कारण भारतीयों में आत्म—गौरव, आत्माभिमान, स्वदेशी गौरव, स्वावलम्बन, शाकाहार, स्वभाषा, स्वसंस्कृति, स्वराज्य, स्वधर्म, स्व—शासन और वैदिक विद्या का प्रचार—प्रसार समाप्त हो गया था जिससे हम अपनी सांस्कृतिक चेतना, सांस्कृतिक गौरव और सांस्कृतिक ज्ञान से रहित होते गए। 1947 में देश को राजनीतिक स्वतन्त्रता तो मिली लेकिन हम विदेशी सांस्कृतिक, भाषाई, आर्थिक गुलामी और जन्मगत जात—पांत के जकड़न से मुक्त नहीं हो पाए। जिसका परिणाम आज हम देख रहे हैं। देश—समाज दिशाहीन और अर्थहीन रास्ते पर आगे बढ़ रहा है। एक नई भयावह गुलामी की ओर हम बढ़ रहे हैं। लेकिन उसे न तो अशिक्षित समाज समझ पा रहा है और न तो शिक्षित समाज ही । कैसे देश—समाज को अपने सांस्कृतिक चेतना की ओर उन्मुख किया जाए, यह एक बड़ी चुनौती है। और सांस्कृतिक गौरव के भूलने के क्या दुष्परिणाम होते हैं, यह भी हम नहीं समझ पा रहे हैं। लेख इन्हीं अनेक बिन्दुओं को समेटता हुआ, आत्मगौरव को जगाने का प्रयास कर रहा है। हिन्दी साहित्य के महान लेखक, स्वदेशी आन्दोलन के सूत्रधार, कादम्बिनी के वरिष्ठ कापी सम्पादक और चिन्तक श्री संत समीर के इस लेख के माध्यम से सांस्कृतिक गौरव को याद दिलाने और सांस्कृतिक जागृति का लाने का प्रयास लेख के माध्यम से किया जा रहा है। आप को लेख कैसा लगा, अपनी प्रतिक्रिया से अवश्य अवगत कराएं।

— समन्वय सम्पादक

आज़ादी के बाद सिर्फ़ पाँच दशकों में ही इस देश का इतना कुछ बदल गया है जितना कि पिछली कई सदियों में भी नहीं बदला था। बदलाव सार्थक और सृजनात्मक होता तो निःसंदेह इस पर ख़ुश हुआ जा सकता था, लेकिन इसकी दिशा नकारात्मक और विध्वंसक ज़्यादा है, इसलिए यह चिन्ता और चर्चा का मुद्दा हो जाता है। सदियों से तमाम उतार—चढ़ावों को झेलते हुए भी अपने अस्मिताबोध के साथ जीने वाला भारतीय समाज इधर के कुछेक वर्षों में ही आत्मविस्मृति का तेज़ी से शिकार हुआ है तो यह अनायास नहीं है। छीजते हुए सांस्कृतिक मूल्यों के चलते भ्रष्टाचार, हिंसा, उच्छृंखलता, बलात्कार जैसी कुप्रवृत्तियाँ यदि आज के समाज में सबसे बड़ी चुनौतियाँ बनकर खड़ी हैं तो यह सब भी अचानक से नहीं हो गया; और न ही, इन बदलावों को प्राकृतिक परिवर्तन की अनिवार्यता या समय के साथ बदलाव की विवशता ही कहकर टाला जा सकता है। ऐसा कहकर संतुष्ट हो जाने की कोई वजह इसलिए नहीं बनती, क्योंकि हज़ारों—लाखों वर्षों से दुनिया के सारे गधे एक जैसे ही रेंकते आ रहे हैं; भैंसे जैसे तब रंभाती थीं आज भी वैसे ही रंभाती हैं; बंदरों की उछल—कूद में कोई परिवर्तन नहीं हुआ; चिड़ियों की चहचहाहट, कोयल की कूक नहीं बदली; मधुमक्खियों ने पराग चूसना और छत्तों में शहद भरना नहीं छोड़ा; बिच्छू का डंक और साँप का दंश वैसे ही है; बकरी का घास चरना और शेर का मांस खाना नहीं छूटा; बीजों में अंकुर फूटना, पौधों का बढ़ना और फूलों का खिलना आख़िर सब कुछ तो वैसे ही हैं। और जब,

सृष्टि के असंख्य जीव–जन्तुओं के जीने का तौर–तरीक़ा इतने बड़े कालखण्ड में भी नहीं बदला, फिर कैसे कहा जाय कि किसी मनुष्य समाज की जीवनशैली का सिर्फ़ कुछ वर्षों में ही कुछ का कुछ हो जाना वक़्त का तक़ाज़ा है। इसे संक्रमणकाल भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अक्सर जब हमें विपरीत परिस्थितियों के निर्माण की वजहें और उनसे बाहर निकल पाने के रास्ते नहीं समझ में आते तो हम इसे संक्रमणकाल कहकर अपनी असमर्थता पर आवरण डाल देना चाहते हैं।

सच यह है कि यदि किसी मनुष्य समाज के मूल्यबोध इतनी तेज़ी से बदल रहे हैं तो यह उस समाज की ख़ुद की बनाई व्यवस्थाओं का ही परिणाम हो सकता है। हमारी मर्यादाएं, हमारे रीति–रिवाज, हमारे आदर्श यदि हमारे आचरण से छिटककर दूर जा पड़े हैं तो इसकी ज़िम्मेदारी लेने से हम बच नहीं सकते। भारतीय समाज यदि मूल्यहीनता के एक अंतहीन दलदल में धँसता हुआ दिखाई दे रहा है तो इसे देख–देखकर सिर्फ़ छाती पीटते रहने का भी कोई अर्थ नहीं है। इस देश की नई पीढ़ी यदि ग़ैरज़िम्मेदार, उच्छृंखल और स्वार्थ के लिए देश तक को बेच देने की प्रवृत्तियों में शामिल होती जा रही है तो इन स्थितियों पर आँसू बहाने में लगी पुरानी पीढ़ी को अपने भी धतकरम पहचानने होंगे जिनसे कि नई पीढ़ी का जन्म हुआ है।

चारित्रिक विचलन की इन भयावह स्थितियों के बावजूद ऐसा भी नहीं है कि सब कुछ एकदम से निराशाजनक ही है। अभी बहुत कुछ भारतीय समाज में ऐसा बचा हुआ है जिसके सहारे राष्ट्र के पुनर्निर्माण का काम किया जा सकता है। आत्मविस्मृति अभी इतनी गहरी नहीं हुई है कि वापस न लौटायी जा सके। ज़रूरत इस बात की है कि देश की व्यवस्था सँभालने वाले और जागरूक लोग सिर्फ़ बहस–मुबाहिसों में विचार के गोले दाग़ने के बजाय एक ईमानदार संकल्प के साथ अपने सांस्कृतिक मूल्यों के उपयोगी सूत्रों की पहचान करते हुए देश की व्यवस्थाओं में सार्थक परिवर्तन की रूपरेखा बनाने की शुरूआत करें। भारतीय समाज के लिए अपनी सांस्कृतिक अस्मिता की पहचान इसलिए भी ज़रूरी है क्योंकि इसी के सहारे यह देश सबसे पहले सभ्यता की ऊँचाइयों तक पहुँचा और अभी भी इसमें संसार की विकराल समस्याओं के समाधान तलाशे जा सकते हैं, जैसा कि महात्मा गाँधी जैसे लोग करके दिखा भी चुके हैं।

अब सवाल यह है कि एक बेहतर समाज निर्माण के लिए हमारा प्रस्थानबिन्दु क्या होगा? असल में यह तय करने के लिए प्राचीन भारतीय जीवन दर्शन और आधुनिक मान्यताओं, दोनों के ही बारे में एक साफ़ समझ विकसित करनी होगी और विश्लेषण की इसी प्रक्रिया से हमारे समाज के मौजूदा चारित्रिक पतन की वजहें भी उभरकर सामने आएंगी।

भारतीय जीवन दर्शन की सबसे मुख्य प्रस्थापना यह है कि सृष्टि में जो कुछ भी जड़–चेतन है उस सबकी उत्पत्ति के पीछे एक महान उद्‌देश्य है। सृष्टि की उत्पत्ति न तो किसी दुर्घटनावश हो गई और न ही यह निरुद्‌देश्य है। सब कुछ सुनियोजित और एक–एक परमाणु तक का स्थान विवेकसम्मत है। इसी से मनुष्य के होने का अर्थ स्पष्ट होता है। हमारी संस्कृति की सारी शाखाएं–प्रशाखाएं इस बात को ही आधार मानकर प्रस्फुटित होती हैं कि मनुष्य जीवन का एक स्पष्ट लक्ष्य है और यह ही सबसे महान है। सृष्टि नियन्ता ने यदि मनुष्य को अन्य असंख्य प्राणियों से एकदम अलग मस्तिष्क की क्षमता देकर विवेकवान होने का गुण दिया है तो इसलिए कि अन्य योनियों की महायात्रा से गुज़रता हुआ आत्मतत्त्व मनुष्य के रूप में आकर जीवन के असली रहस्य को जान सके और संसार के सारे अज्ञान के बंधनों को काटता हुआ परम सत्य तक पहुँच सके। जिज्ञासा, चीज़ों को जानने–समझने की इच्छा या कहें सत्य की खोज, ही मनुष्य का मूल स्वभावगत गुण है। मनुष्य जो कुछ खोजता, बनाता है वह सब दरअसल अपने इसी स्वभाव की वजह से करता है। लेकिन यहीं पर भारतीय जीवन दर्शन सावधान करता है कि मनुष्य को अपनी जीवन–यात्रा में सृष्टि के सिर्फ़ फुटकर ज्ञान को ही नहीं अर्जित करते चले जाना चाहिए, क्योंकि सूक्ष्म परमाणुओं, असंख्य जीव–जतुओं और सूरज, चाँद, सितारों की दुनिया तक ज्ञान की अटूट और अपरिमित शृंखला जन्म–जन्मान्तर तक भी ख़त्म होने वाली नहीं है। स्थूल उपकरण और भौतिक प्रयत्न अन्ततः अज्ञान के बंधनों का समूल उच्छेदन नहीं कर

सकते। ऐसे में सांसारिक क्षमताएं बढ़ाते हुए भी इस भवबंधन से पार पाने के लिए तो मनुष्य को बाह्य के साथ–साथ एक आत्मिक अन्तर्यात्रा से भी गुज़रना पड़ेगा। आत्मिक स्तर पर जीवन–व्यवहार साधने की अवधारणा से ही वास्तव में धर्म (सम्प्रदाय नहीं) के मूलतत्त्व नैतिकता, मूल्यबोध, अध्यात्म आदि निकलते हैं।

हर प्रकार के अज्ञान बंधनों से छूट जाने, या कहें परम सत्य (दूसरे शब्दों में 'मुक्ति' या 'मोक्ष') तक पहुँच जाने के मनुष्य जीवन के मुख्य लक्ष्य को साधने के लिए ही भारतीय संस्कृति में वर्ण–व्यवस्था और आश्रम–व्यवस्था जैसी आयोजनाएं की गईं। बाद में पैदा हुईं विकृतियों को परे करके देखें तो वास्तव में ये व्यवस्थाएं किसी भी आदर्श समाज की अनिवार्यताएं ही नज़र आएंगी। प्राचीन भारत में वर्ण–व्यवस्था जन्मगत न होकर स्पष्ट रूप से कर्मगत है। वर्ण का अर्थ ही है – अपनी रुचि और सामर्थ्य के अनुसार काम का वरण करना। इसी नाते तब 'ब्राह्मण' या ज्ञानी वर्ग, 'क्षत्रिय' या व्यवस्था संचालक वर्ग, 'वैश्य' या व्यापारी और उत्पादक वर्ग तथा 'शूद्र' या सेवक वर्ग में से न तो कोई अछूत है और न ही घृणित। वहाँ शूद्र वह है जिसका तमाम कोशिशों के बाद भी ज्ञान का दूसरा जन्म नहीं हुआ; अर्थात् जो द्विज नहीं बना। इसके बावजूद शूद्र कर्तव्यपरायण और धर्मात्मा हो सकता है। इस तरह से अपने–अपने स्वभाव के अनुसार एक ही परिवार में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों ही वर्ण के लोग हो सकते हैं।

इसी तरह से मनुष्य जीवन को औसतन सौ वर्ष का मानकर पहले 25 वर्ष तक ज्ञान प्राप्ति के लिए 'ब्रह्मचर्य', दूसरे 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य काल में प्राप्त ज्ञान को अनुभव में उतारने के लिए 'गृहस्थ', तीसरे 25 वर्ष में अब तक के अनुभवजन्य ज्ञान को संसार के कल्याण में लगाने के लिए 'वानप्रस्थ' और अन्तिम 25 वर्षों में परम सत्य या मोक्ष प्राप्ति की असली यात्रा के लिए 'संन्यास' आश्रम की व्यवस्था की गई थी। यहाँ यह आसानी से समझा जा सकता है कि एक विराट लक्ष्य को लेकर चलने वाले इस तरह के जीवन दर्शन में किसी भी तरह के छोटे से छोटे चारित्रिक स्खलन या भ्रष्ट आचरण की गुंजाइश नहीं हो सकती। इसी वजह से ही जुबान से झूठ बोल देना सबसे आसान होते हुए भी इसे सबसे बड़े पाप की श्रेणी में रखा गया। दुर्भाग्य से समाज के स्वार्थी तत्त्वों ने कालान्तर में इस आदर्श व्यवस्था को प्रदूषित कर दिया, जिसका कि दुष्परिणाम हम भुगत रहे हैं।

प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा व्यवस्था, अर्थव्यवस्था या कि राजनीति व्यवस्था तक सब कुछ ही मोक्ष प्राप्ति के साधन बनते दिखाई देते हैं। सिर्फ़ शिक्षा व्यवस्था की बात करें तो हम देखेंगे कि भारतीय शिक्षा विद्यार्थी के मस्तिष्क में सिर्फ़ जानकारियों का ढेर जमा करने का समर्थन नहीं करती। यहाँ की शिक्षा में छोटी से छोटी जानकारी भी धर्म (कर्त्तव्यभाव) से अनुप्राणित है। दरअसल यहाँ की शिक्षा व्यवस्था इस स्पष्ट समझ के साथ चलती है कि इस संसार में सृजनात्मक और विध्वंसक दोनों ही तरह की विद्याओं का कभी न ख़त्म होने वाला अपार भंडार है। इसलिए मनुष्य को उसी सृजनात्मक ज्ञान की दिशा में बढ़ना चाहिए जो उसे उसके मुख्य लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक बने। इस संस्कार व्यवस्था का ही परिणाम था कि इसमें दीक्षित विद्यार्थी शिक्षा के जितने ही उच्च स्तर पर पहुँचा, उसके अहंकार व स्वार्थ उतनी ही आसानी से तिरोहित होते गए और वह ऋषित्व की गरिमा को धारण कर सका। भारतीय संस्कृति की इन विशेषताओं की सक्षमता इस बात से भी प्रमाणित होती है कि महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी जैसे क्रांतिधर्मा महापुरुष अपनी संस्कृति के संस्कारों को धारण करते हुए ही इतनी ऊँचाई तक पहुँच सके।

इस देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह हुआ कि आज़ादी मिलने के बाद हमारे शुरू के व्यवस्था सँभालने वाले लोगों ने सब कुछ अपने आप ठीक हो जाने के अति उत्साह और अपनी अधकचरी सांस्कृतिक समझ के चलते भारतीय मान्यताओं के अनुकूल व्यवस्थाएं बनाने की कोई कोशिश नहीं की। एक तो समाज के चरित्र निर्माण के लिए सबसे ज़रूरी शिक्षा या संस्कार व्यवस्था को हमारे नेताओं ने हमारे सांस्कृतिक मूल्यों के अनुसार विकसित नहीं होने दिया और दूसरे, आधुनिक विज्ञान और विकासवाद ने सृष्टि की उत्पत्ति को महज़ दुर्घटना क़रार दिया। ऐसे में इस देश की नई पीढ़ी तक अपने सांस्कृतिक मूल्यों के संस्कार तो ख़ैर पहुँचे ही नहीं और जो कुछ नए ज़माने ने सीखा वह सब अधिकांश में आधुनिक विज्ञान

की निरुद्देश्यता का प्रतिगामी संस्कार था। आधुनिक विज्ञान की स्थापनाओं और विकासवाद के अनुसार जब यह संस्कार प्रबल हो जाता है कि यह सृष्टि तो महज़ एक आकस्मिक घटना है और असंख्य जीव–जन्तु या पदार्थ अणु–परमाणुओं के भौतिक संयोगमात्र हैं और अललटप्प में ही बन गए हैं; इस संसार का कोई उद्देश्य नहीं है; तो फिर किसी के चरित्रवान बने रहने या परोपकारी भाव से जीवन गुज़ारने का भी क्या मतलब? इस सीख के बाद कि खाना, पीना, सोना, जागना ही मनुष्य जीवन की नियति है और इसका कोई पारलौकिक उद्देश्य नहीं है,तो पाप–पुण्य, नैतिकता–अनैतिकता, स्वार्थ–निःस्वार्थ के भाव भी बेमानी हो जाते हैं। आधुनिक विज्ञान और विकासवाद का सबसे बड़ा दुर्गुण यही है कि यह चीज़ों को सिर्फ़ भौतिक रूप में पदार्थ भाव से ही देखता है और इसमें धर्म और संस्कृति के तत्त्वों का सर्वथा अभाव है। आध्यात्मिकता इस विज्ञान में सिरे से ही ग़ायब है। ऐसे में नैतिकता, जो कि निरा आध्यात्मिक मूल्य है, का संस्कार नए विज्ञान द्वारा भला कैसे दिया जा सकता है।

आधुनिक विज्ञान की प्रचारित मान्यताओं, विकासवाद और मैकाले की औपनिवेशिक शिक्षा ने मिलकर भारतीय समाज को उसकी जड़ों से अलग करने में कोई कोर–कसर नहीं रख छोड़ी है। वर्तमान स्थिति यह है कि अपनी जड़ों से कटता हुआ यह समाज न तो पूरी तरह अपने सांस्कृतिक मूल्यों को ही भुला पाया है और न ही विकास की छद्म चमक बिखेरते नए मूल्यों को ही पूरी तरह से अपना सका है। सांस्कृतिक समझ की घोर अधकचरी स्थिति है यह। न इधर न उधर। असमंजस इतना है कि आज की पीढ़ी न तो पूरी तरह नैतिक रह सकती है और न ही अनैतिक। पर यह बीच की स्थिति भी बहुत ज़्यादा समय तक नहीं चलने वाली है। जैसे–जैसे पश्चिम द्वारा प्रचारित विज्ञान की मान्यताएं और प्रभावी होंगी और पश्चिम की भोगवादी संस्कृति आदर्श बनती जाएगी, वैसे–वैसे आने वाली पीढ़ियाँ भी इस जन्म में हीं सब कुछ भोग लेने की स्वार्थी मनोवृत्ति का दास बनती जाएंगी और किसी तरह की नैतिकता–अनैतिकता का कोई मायने नही रह जाएगा। क़ानून वग़ैरह की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का अंकुश ही आचरण की भ्रष्टता पर कुछ रोक लगाएगा; अन्यथा, नए ज़माने का आदमी मौक़ा मिलते ही किसी भी तरह के भ्रष्टाचार से कोई गुरेज़ नहीं करेगा। प्रशासनिक व्यवस्था में थोड़ी भी ढिलाई होते ही जिस तरह से लोगों की उच्छृंखलता अभी ही देखने को मिल जाती है, उसी से आने वाले भविष्य के संकेत पहचाने जा सकते हैं।

भारतीय समाज को चारित्रिक पतन के इस दलदल से उबारने के लिए अब ज़रूरत इस बात की है कि हमारे समाज के ज़िम्मेदार लोग संकट की पहचान करते हुए इस देश की व्यवस्थाओ को इस देश की सांस्कृतिक विशेषताओं के अनुसार ढालने की शुरूआत करें। यह होगा तो यहाँ का समाज फिर से अपना प्रवाह पकड़ सकता है। आधुनिक विज्ञान के साथ सांस्कृतिक, आध्यात्मिक मूल्यों का सत्य भी जुड़े और संस्कार या शिक्षा व्यवस्था का भारतीयकरण हो, तो एक उदात्त चरित्र का समाज बनने में कोई मुश्किल नहीं है। लेकिन यदि विकास और विज्ञान का लक्ष्यविहीन मौजूदा प्रवाह चलता रहा और सिर्फ़ शासन–प्रशासन के ही नए–नए अंकुश भ्रष्टाचार को रोकने के लिए आज़माए जाते रहे, या कि बिना संस्कार व्यवस्था को सुधारे ही समाज के चरित्रवान होने की उम्मीद की जाती रही, तो यह समाज एक दिन उस स्थिति में खड़ा मिलेगा जहाँ से चारों तरफ़ अंतहीन अंधकार के अलावा और कुछ नहीं दिखाई देगा।**

स्वामी श्रद्धानन्द ऐसे सुधारक थे जो वाक्शूर नहीं, कर्मवीर थे। उनका विश्वास जीवित जाग्रत था। इसके लिए उन्होंने अनेक कष्ट उठाए थे। वे वीर सैनिक थे। वीर सैनिक रोग शैया पर नहीं किन्तु रणांगण में मरना पसंद करते हैं। मुझे उनसे तथा उनके अनुयायियों से ईर्ष्या होती है। उनका कुल तथा उनका देश उनकी इस शानदार मृत्यु पर बधाई के पात्र हैं। वे वीर के समान जिये और वीर के समान ही मरे।

– महात्मा गाँधी

भव्य वैदिक उत्सव, ऋषि मेला एवं आर्य लेखक सम्मेलन

आर्य लेखक परिषद् के तत्वावधानएवंजिला प्रतिनिधि सभा, प्रयाग (उ.प्र.) के सहयोग से

वैदिक दर्शन, साहित्य, संस्कृति एवं धर्म प्रचार शिविर, प्रयाग (कुम्भ मेला 2019)

विषय : स्मारिका प्रकाशन के लिए लेखकों और विज्ञापन दाताओं से अपील

सम्माननीय विज्ञजन,

जैसा की आप सभी जानते हैं प्रयाग में भारतीय संस्कृति, साहित्य और धर्म का संवाहक कुम्भ की बहुत लम्बी परम्परा रही है। कहा जाता है, प्रयाग और अन्य स्थानों पर लगने वाले कुम्भों की परम्परा मानव संस्कृति के साथ प्रारम्भ हुई थी। विश्व में कहीं पर, किसी भी अवसर पर लगने वाले मेलों में सबसे बड़ा मेला प्रयाग का कुम्भ मेला है जिसमें करोडों लोग बिना किसी आमंत्रण या बुलावे के पहुँचते हैं। विश्व के अनेक आश्चर्यों में यह भी एक आश्चर्य है। महर्षि दयानंद प्रयाग में तीन बार पधारे और अखण्ड संवेदना एवं विश्व प्रेरणा का स्वर्णिम इतिहास लिख गए। प्रयाग के प्रसिद्ध नागवासुकी मन्दिर पर महर्षि ने माघ की विकट रातें गुजारी थीं जिसे देखकर अंग्रेज अधिकारी ने दांतों तले अंगुली दबा ली थी। इसी क्रम में महर्षि ने जुलाई 1874 ई. में लगभग तीन माह रहकर विश्व प्रसिद्ध पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना का शुभारम्भ भी यहीं किया था।

विशेष यज्ञ भूमि होने के कारण इसका नाम 'प्रयाग' पड़ा। यह भूमि गंगा व यमुना नदी और पौराणिक विद्या की देवी कही जाने वाली सरस्वती का संगम होने के कारण प्रसिद्ध है। ज्ञान और सरस्वती की धारा वैसे तो यहाँ हमेशा प्रवाहित होती रहती है लेकिन कुम्भ मेले के विशेष अवसर पर यह धारा ज्ञान की धारा के रूप में पावन बनकर जन–जन को तृप्त करती रही है। वहीं पर पौराणिक मान्यताओं के महंत भी अपना प्रचार–प्रसार करते हैं। 2019 में लगने वाले अर्द्ध कुम्भ के अवसर पर ज्ञान, दर्शन और धर्म प्रचार की धारा प्रवाहित करने का निर्णय जहाँ प्रयाग की आर्य समाजों की ओर से लिया गया है वहीं पर आर्य लेखकों, पत्रकारों और विद्वानों की संस्था 'आर्य लेखक परिषद्' ने मिलकर नव जागरण शिविर लगाकर ज्ञान रूपी सरस्वती की धारा को प्रवाहित करने निर्णय लिया है। 13 जनवरी 2019 से 4 मार्च 2019 तक यह मेला चलेगा। यह अवसर साहित्य वितरण, वेदोपदेश और धर्म प्रचार शिविर के द्वारा समाज सुधार और वैदिक धर्म प्रचार के रूप में सभी आर्य महानुभावों के लिए 'विशेष' बन सकता है। अतः अर्द्धकुम्भ में अपनी आहुति देने के लिए सभी आर्यजन सादर आमंत्रित हैं। शिविर में भोजन और आवास की व्यवस्था पूर्णतः निःशुल्क है, परन्तु सहुलियत के लिए पूर्व पंजीकरण कराना अच्छा रहेगा। यदि प्रचार–प्रसार के लिए आर्यजन किसी तरह सहयोग देना चाहते हैं तो उनका सहर्ष स्वगत है। ज्ञातव्य है, यह विश्व मेला है। करोड़ों लोग मेले में आते हैं, अतः सभी आर्य महानुभावों का भी दायित्व बनता है कि वैदिक धर्म और वैदिक ज्ञान गंगा के प्रचार–प्रचार के लिए अपना तन, मन और धन समर्पित करें जिससे वैदिक धर्म के प्रचार–प्रसार का हमारा मूल उद्देश्य पूरा हो सके।

स्मारिका प्रकाशन के ज्ञान–विज्ञान यज्ञ में यज्ञकर्ता बने

ज्ञान, धर्म, विद्या और आर्ष विचार धारा को 'कुम्भ ज्ञान–विज्ञान यज्ञ स्मारिका' के माध्यम से सुरक्षित करने का संकल्प लिया गया है। जिसमें चारों तत्त्वों (ज्ञान, धर्म, वेद–विद्या व दर्शन) सम्बंधी लेखों का समावेश के अतिरिक्त आर्यसमाजों, आर्य शिक्षण संस्थाओं/संस्थानों का सूक्ष्म परिचय सम्मिलित किया जाएगा। इसके अतिरिक्त आर्य महानुभाव अपनी अपनी संस्था, संस्थान, संगठन, फर्म और निजी तौर पर शुभकामनाएँ व उत्पाद के विज्ञापन के रूप में भी देकर हमें सहयोग कर सकते हैं।सभी प्रकार की सामग्री नवम्बर के अंत तक मेरे पते या अणुडाक पते (ई–मेल) के माध्यम से **भेंज** सकते हैं। लेख (रचना) कृतिदेव 10 या देवनागरी फांट में भी बर्ल्ड फाइल में टंकित कराकर ही भेंजे।

संयोजक/सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
ए–11,त्यागी विहार,
नांगलोई,दिल्ली–110041
वायुदूत : 8178710334/9868235056

प्रबंधक/व्यवस्थापक
आर्य राजेन्द्र(कपूर)
पत्र व्यवहार : आर्यसमाज मुण्डेरा बाजार,
प्रयाग(इलाहाबाद)–211011
राजेन्द्र कपूर, चलभाष : 09889482489

बलिदान दिवस पर विशेष

नौजवानों के प्रेरणाश्रोत : अमर बलिदानी पं० रामप्रसाद बिस्मिल

– प्रांशु आर्य
चलभाष : 9993970940

पौराणिको को में एक गीत बड़ा प्रसिद्ध है कि मेरी माँ शेरों वाली है,पर वह शेरों वाली कौन सी माँ है ये वे भी नहीं जानते। किंतु वास्तव में ऐसी शेरों वाली माँ अगर कोई है तो वह यह भारत माँ ही है जिसने समय–समय पर ऐसे अनेक शेर पुत्रों को जन्म दिया हैं जिन्होंने हँसते–हँसते अपना रक्त बहाकर व अपने प्राणों की आहुति देकर भी इसके सम्मान की रक्षा की हैं।

पंडित राम प्रसाद बिस्मिल एक ऐसे ही शेर पुत्र थे जिन्होंने अपने अदम्य साहस, वीरता व सूझ–बूझ से बर्बर अंग्रेज सरकार के होश उड़ा दिये और मात्र ३० वर्ष की अल्पायु में ही भारत माता की गुलामी की बेड़ियां कॉंटने के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी।

राम प्रसाद 'बिस्मिल'

पंडित राम प्रसाद बिस्मिल एक महान् क्रांतिकारी, देशभक्त ही नहीं बल्कि एक उच्च कोटि के लेखक, कवि, शायर व साहित्यकार भी थे। इनकी लिखी हुई समस्त रचनाएँ बहुत ही जोशीली, क्रांतिकारी, देशभक्ति भावना से ओतप्रोत मुर्दे में भी जान फूँक देने वाली होती थीं। इनकी लिखी हुई प्रसिद्ध गजल –

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजू–ए–कातिल में है।

वीर रस से भरी हुई यह प्रसिद्ध पंक्तियाँ बिस्मिल की वीरता और बलिदानी भावना की परिचायक तो हैं ही साथ ही यह वह पंक्तियाँ हैं जिसने अनेकों क्रांतिकारियों के रक्त में उबाल लाने का कार्य किया। जिसे गा–गा कर अनेक क्रांतिकारियों ने जेल की कठोर यातनाएं सहीं और फांसी के फंदे तक झूले ।

अपनी आत्मकथा में इस मातृभूमि के लिए मर मिटने की भावना लिए वे लिखते हैं –

यदि देशहित मरना पड़े, मुझको सहस्रों बार भी,
तो भी न मैं इस कष्ट को, निज ध्यान में लाऊँ कभी।
हे ईश! भारतवर्ष में शत बार मेरा जन्म हो,
कारण सदा ही मृत्यु का, देशोपकारक कर्म हो।

पाठको! भारतमाता के लिए प्राण न्योछावर करने वाले इस अमर बलिदानी का जन्म ११ जून सन् १८६७ को उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर जिले में हुआ था। इस महान सपूत को जन्म देने वाली माता का नाम मूलमति व पिता का नाम मुरलीधर था। बचपन से ही यह बड़े उद्दण्डी स्वभाव के थे। पढ़ने–लिखने में इनकी विशेष रूचि न थी। बचपन में कुसंगति में पड़ गए। अपने पिताजी के संदूक से पैसे चुराने लगे। उस पैसे से गंदे उपन्यास खरीदकर पढ़ने लगे। एक ही दिन में ४०–५० सिगरेट पीने लगे। कभी–कभी भांग भी जमा लेते थे। परिणामस्वरूप उर्दू मिडल की परीक्षा में लगातार दो वर्ष तक उत्तीर्ण न हो सके।

किन्तु समय बदला और एक दिन आर्य समाज के एक सन्यासी स्वामी सोमदेव जी का उनके गाँव शाहजहाँपुर में प्रचारार्थ आगमन हुआ। उन्हीं के गाँव के पुजारी मुंशी इंद्रजीत जी के सम्पर्क से वह स्वामी सोमदेव जी के पास आने–जाने लगे। स्वामी जी ने पहले उन्हें संध्या करना सिखाया और फिर महर्षि दयानन्द का अमर क्रांतिकारी ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने को दिया। किशोरावस्था में रामप्रसाद ने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ना आरम्भ किया। वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न करने वाला वह ग्रंथ रामप्रसाद के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लेकर आया और उनके जीवन

का तख्ता ही पलट गया। सारे कुसंग छूट गए और वह अब प्रतिदिन व्यायाम और ब्रह्मचर्य का पालन करने लगे। **वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं–**

सत्यार्थ प्रकाश की अध्ययन ने मेरे जीवन के इतिहास में एक नवीन पृष्ठ खोल दिया। ––––

मैं थोड़े ही दिनों में कट्टर आर्य समाजी हो गया। आर्य समाज के अधिवेशनों में आता जाता। संन्यासी महात्माओं के उपदेश को बड़ी श्रद्धा से सुनता। जब कोई संन्यासी आर्यसमाज में आता तो उनकी हर प्रकार से सेवा करता।

इस प्रकार आप देख सकते हैं कि आर्य समाज के सम्पर्क में आने से किस तरह वे एक उद्दंड बालक से एक सुसंस्कारी और धार्मिक प्रवृत्ति के बन गए। वे अब प्रतिदिन संध्या–हवन करने लग गए।

आज देश के नौजवान जो शराब और सिगरेट के धुएँ में दिन–रात डूबे रहते हैं उनके लिए पंडित राम प्रसाद बिस्मिल का जीवन अत्यंत प्रेरणादायी है। मैं यहाँ इतना ही कहूंगा कि ऐ मेरे प्यारे नौजवान साथियों! अगर आप अपनी जिंदगी में कुछ करना चाहते हो, बुराइयों को छोड़ना चाहते हो, अपने देश के लिए मर मिटने की तड़प रखते हो तो एक बार पंडित राम प्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा अवश्य पढ़ियेगा जिसमें उन्होंने विशेषकर नौजवानों को ब्रह्मचर्य पालन का संदेश देते हुए उसके अद्भुत परिणाम व लाभ बताएं हैं।

कुछ समय पश्चात् बिस्मिल को प्रसिद्ध क्रान्तिकारी भाई परमानंद की पुस्तक 'तावरीखे हिन्द' पढ़ने को मिली जिससे वे बहुत प्रभावित हुए और इसे पढ़ने के पश्चात् ही उनका क्रान्तिकारी जीवन में प्रवेश होता है।

क्रान्तिकारी जीवन में प्रवेश के साथ ही उनका चंद्रशेखर आजाद, रोशन सिंह, अशफाक उल्ला खान, भगत सिंह, सुखदेव आदि अनेक क्रान्तिकारियों से संपर्क हुआ। उन्होंने इन सभी के साथ मिलकर हिंदुस्तान रिपब्लिक एसोसिएशन नामक दल की स्थापना की। जिसके वे प्रमुख नेता थे। इसी दल के साथ मिल कर के उन्होंने प्रसिद्ध काकोरी कांड को अंजाम दिया जिसमें उन्होंने लुटेरी और दमनकारी अंग्रेजी हुकूमत को सबक सिखाने के लिए लखनऊ जा रही ट्रेन का काकोरी स्टेशन के पास सरकारी खजाना लूटने की योजना बनाई और ६ अगस्त १६२५ को अपनी उस योजना को अंजाम दे दिया। किन्तु दो दिन के पश्चात् ही उन्हें और उनके अन्य साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

न्यायालय में अभियोग चलाया गया और उन्हें उनके दो अन्य साथी अशफाक उल्ला खान और रोशन सिंह के साथ फँसी की सजा सुनाई गई।

आजादी के मतवाले पंडित राम प्रसाद बिस्मिल व उनके साथियों को फांसी की सजा सुनकर कोई हैरानी व निराशा न हुई इसके विपरीत वे प्रसन्न जेल में प्रतिदिन सुबह व्यायाम, फिर संध्या और हवन किया करते। मृत्यु के अंतिम दिन तक उन्होंने अपनी इस दिनचर्या का निरंतर पालन किया।

फांसी के दिन जब बाबा राघव दास उनसे अंतिम मुलाकात करने आए तब बिस्मिल प्रतिदिन की भांति सवेरे उठकर दाढ़ी बना रहे थे, उन्हें दाढ़ी बनाता देखकर वे बोले बिस्मिल आज तुम्हारी फांसी है और तुम हजामत बना रहे हो? इस पर बिस्मिल हँसकर बोले – **जब कोई यात्रा पर जाता है तो बन संवर कर जाता है और मैं तो महायात्रा पर जा रहा हूँ** और फिर फांसी के समय जेलर द्वारा अंतिम इच्छा पूछने पर उन्होंने सिंहनाद करते हुए कहा –I wish the downfall of British Empire अर्थात् मैं ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नाश चाहता हूँ। फिर वंदे मातरम का नारा लगाते हुए १६ दिसम्बर १६२७ को गोरखपुर जेल में फांसी के फंदे पर हँसते हुए झूल गए। देश के नौजवानों के नाम यही संदेश देते हुए –

नौजवानों यही मौका है उठ खेल खेलो,
और सर पर जो बला आए खुशी से झेलो,
कौम के नाम पे सदके पर जवानी दे दो,
फिर मिलेगी न ये माता की दुआएं ले लो।।

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतःस्याम।

हे मातृभूमि! हम सर्व रोग–रहित और स्वस्थ होकर तेरी सेवा में सदा उपस्थित रहें। तेरे अन्दर उत्पन्न और तैयार किए हुए – स्वदेशी पदार्थ ही हमारे उपयोग में सदा आते रहें। हमारी आयु दीर्घ हो। हम ज्ञान–सम्पन्न होकर आवश्यकता पड़नेपर तेरे लिए प्राणों तक को बलिदान करने वाले हों। – **अथर्ववेद (१२–१– ६२)**

सोशल मीडिया : फुल टेंशन फुल इंटरटेनमेंट

–अखिलेश आर्येन्दु

केंद्र सरकार ने आजादी के बाद प्रेस के कामकाज को नियंत्रित करने के लिए एक संस्थागत ढांचा बनाना शुरू किया था। 1952 और 1977 में दो प्रेस आयोग गठित किए गए। 1956 में 'रजिस्ट्रेशन ऑफ बुक्स एक्ट' का गठन किया गया। इसके तरह 1965 में एक संविधानगत संस्था 'प्रेस परिषद्' की स्थापना की गई जो आज भी प्रेस और प्रेस से संबधित सभी विषयों पर निगाह रखती है।

आजादी के बाद राष्ट्र के स्तर पर एक राष्ट्रवाद की सहमति बनाने का लक्ष्य मीडिया के केंद्र में था। मीडिया कहीं न कहीं लोगों में विश्वास का संस्कार जगाने में कामयाब दिखाई देता है। अखबार, पत्रिकाओं में प्रकाशित विचार और समाचार को सत्य, साफ और स्वीकार्य के रूप में देखा जाता था। इसी तरह रेडियो और दूरदर्शन (जब प्राइवेट चैनलों का उदय नहीं हुआ था) से प्रसारित समाचार और विचार को भी सच और उपयोगी मानकर स्वीकार्य किया जाता था। यहाँ तक कि कानून, पंचायत, न्याय और साहित्य के क्षेत्र में इसे प्रामाणिक और तथ्यपरक माना गया। इस समय तक रेडियो और टीवी सरकार के हाथ में और मुद्रित मीडिया निजी क्षेत्र में था। मीडिया का यह दौर कई मायनों में जीवन, समाज,संस्कृति, राजनीति, विज्ञान और शिक्षा को नई दिशा देने में कामयाब दिखाई देता है।

और मीडिया का तीसरा दौर भी आया जब कई स्तरों पर बदलाव हुए। इसकी शुरूआत नब्बे के दशक में हुआ। भारतीय राजनीति के केंद्र में कांग्रेस शासित सत्ता नरसिंम्हा राव के हाथ में थी। उन्होंने ने ही तथाकथित राष्ट्र–निर्माण और विकास के नाम पर डब्ल्यूटीओ यानी विश्व व्यापार संगठन में शामिल होकर उदारीकरण, वैष्वीकरण और निजीकरण के फार्मूले को अपनाया और संविधान में संशोधन भी किया। मीडिया का यह दौर ऐसे बदलावों से गुजरा जो कई रूपों और स्तरों में बाजारीकरण को स्वीकारता दिखाई देता है। टीवी और रेडियो पर सरकारी पकड़ ढीली पड़ी। निजी क्षेत्र में चलने वाले चौबिसो घंटे चलने वाले चैनलों और एफ.एम रेडियो चैनलों का सारे देश में बहुत बड़े पैमाने पर विस्तार हुआ।

उसी का प्रतिफल है कि आज देश में भारतीय भाषाओं में चलने वाले टीवी चैनलों ने अंग्रेजी चैनलों को पछाड़ दिया। करोड़ों लोग भारतीय भाषाओं में चलने वाले इन चैनलों से किसी न किसी रूप में जुड़े हुए हैं। इसे हम मीडिया में आए नव–क्रान्ति का दौर कह सकते हैं। इसे हम मीडिया का बहु–बाजारीकरण भी कह सकते हैं। नई प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल ने सोशल मीडिया की ताकात अजेय बना दी है। मीडिया की हालात इस तूफानी दौर में महज दस सालों में वही बनती दिखाई देती है जिसे पश्चिम में 'मीडियास्फेयर' कहा जाता है।

आज का सोशल मीडिया कई स्तरों पर नया है और अपना असर भी कई तरह से डाल रहा है। और हम देखें तो पाते हैं, 21वीं सदी के पहले दशक के अंत तक बहुत बड़ी तादाद में लोगों के निजी और व्यावसायिक जीवन का एक अहम हिस्सा नेट के जरिए संसाधित होने लगा। अब तो ऐसा लगता है कि बिना नेट के समाज के किसी भी तबके की जिंदगी आधी–अधूरी है। देश –दुनिया से जुड़ जाने का सुख नई पीढ़ी के लिए तो एक अद्भुत एहसास जैसा है। टोटल सोशल मीडिया एक टच स्क्रीन पर बहुत कम व्यय करके हासिल कर लेना नई पीढ़ी के लिए किसी स्वप्न को साकार करने जैसा है। जो मनोरंजन घर में टीवी स्क्रीन पर बैठकर किया जाता था नेट की सहज उपलब्धता ने उसे उसके मोबाईल पर सहजता से उपलब्ध करा दिया है। दुनिया की कोई भी जानकारी, आविष्कार, खोज, शोध, परीक्षण, रोजगार, साहित्य, मनोरंजन, खेल, संगीत, गीत, समाचार, लेख, बातचीत, संदेश और संवाद एक पल के मोबाईल टच स्क्रीन पर अंगुलियों का स्पर्श पाते ही सामने मौजूद हो जाता है। ऐसा लगता है कोई मोबाईल नामक जादूगर ने अपनी जादूगरी से उपभोक्ता की चाहत के मुताबिक तुरत–फुरत में सब कुछ मुहैया करा दिया।

ग्लोबल संस्थाओं ने भारत को अपना अपने मीडिया प्रोजेक्टों के लिए आउटसोर्सिंग के केंद्र बनाकर भारतीय बाजार में मौजूद मीडिया के विशाल बाजार पर ही कब्जा नहीं किया बल्कि यहां की असाधारण टेलेंट–पूल का ग्लोबल बाजार के लिए दोहन करना शुरू किया। हैरत में डालने वाली बात यह है कि भारत की नई पीढ़ी ने इस षड़यंत्र को अपने लिए आज भी वरदान समझा हुआ है। किस तरह से विदेशी कंपनियों ने भारत की अर्थ व्यवस्था पर विज्ञापनी सोशल मीडिया के जरिए कब्जा जमाना शुरू किया जिसके दुष्परिणामों के बारे में आम आदमी को पता नहीं है। वह तो महज इसे विज्ञान का वरदान समझकर इसका सहज उपभोक्ता बनना ही ठीक समझा है। विज्ञापनों ने इसे और भी अधिक बाजारू बना दिया है। आम आदमी इस बाजार का सबसे बेहतर उपभोक्ता साबित करने के लिए इसके कसीदे कढ़ने में ही अपनी योग्यता समझी हुई है।

कहा तो यह भी जाता है कि आम आदमी सोशल मीडिया का उपयोग भी बड़े पैमाने पर करके खुद को संतुष्ट पा रहा है। परंतु हकीकत महज इतना ही नहीं है। कहने को तो रेलवे–टिकटिंग, लाइफ इंशोरेंस, ई–कार्मस, ई–टिकटिंग और ई–गर्वनेंस जैसी सुलभता सोशल मीडिया का उपहार है। लेकिन दूसरी तरफ अश्लीलता, हिंसा, ठगी, क्रूरता और भ्रष्टाचार के नए चेहरे भी आए। इससे नई पीढ़ी को बहुत संकुचित और स्वार्थी बना दिया है।

मीडिया के सकारात्मक पक्ष की बात करें तो पाते हैं कि सेहत, शिक्षा, रोजगार, बाजार, व्यापार और खेती–किसानी जैसे कार्यों में भी मीडिया की पहुंच गहरी हो गई है। बेहतर सेहत के देशी–विदेशी नुस्खे, घातक बीमारियों के सहज इलाज और गुमशुदा की खोज, वर–वधु खोजने से लेकर भाविष्यफल और वास्तु शास्त्र की जानकारी सोशल मीडिया के जरिए जितनी सुलभता से आज हासिल हो रहा है वैसा कभी नहीं हुआ।

यदि हम जीवन, परिवार और समाज की बेहतरी के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करें तो अनेक लाभ घर बैठे भी हो सकते हैं। कृषि, बागवानी, उद्योग–धंधे, व्यापार, बेहतर शिक्षा, बेहतर सेहत, सुगम यात्रा, सेक्स, कानून की जानकारी, अनेक समस्याओं के निदान, आंधी–तूफान, बाढ़, बारिश, अकाल और पूरी दुनिया के एक–एक कण और पल की स्थिति की जानकारी आज सोशल मीडिया के जरिए उपलब्ध कराया जा चुका है। पुस्तकों का स्थान धीरे–धीरे वेबसाइट्स ने ले लिया है। अनेक एप्स मुफ्त में नेट पर उपलब्ध हैं। इन्हें डाउनलोड करके इनका बेहतर इस्तेमाल किया जा सकता है।

सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र पर प्रभाव

हम देखते हैं कि सोशल मीडिया ने नई पीढ़ी को हर स्तर पर प्रभावित किया है। दिन ही नहीं रात भी सोशल मीडिया के नाम हो गई है। भारत के गांव और अफ्रीकी देशों के किसी गांव को जोड़ने में एक मिनट भी नहीं लगता। अपने गांव की मौलिकता, नूतनता और उत्तमता इससे प्रभावित हो रही है। भारतीय संस्कृति, शिक्षा, स्वास्थ्य, भाषा, विज्ञान और अध्यात्म सभी कुछ विदेशी प्रभाव के कारण विकृत होते जा रहे हैं। इस तरह से मिलावटी जीवन शैली बनती जा रही है जो न तो भारतीय रह पा रही है और न तो पूर्णतः विदेशी ही। मैकडोलन संस्कृति का खुलापन सोशल मीडिया के जरिए नई पीढ़ी को एक 'वस्तु' में तबदील कर दिया गया है। नई पीढ़ी इसे 'माडर्न' विकास के रूप में एक दीवाने के रूप में स्वीकारती जा रही है। इससे भारतीयता का उच्चतम भाव कहीं लुप्त हो गया है।

अश्लीलता, खुला सेक्स, खुली दोस्ती और अनजानी दोस्ती सोशल मीडिया का सबसे बुरा असर युवाओं के मन और शरीर पर देखा जा रहा है। इस पर गौर करने की जरूरत है। नई जानकारियों के नाम पर निजी जानकरियों और फोटो, वीडियो मुफ्त में हासिल करके युवा कई तरक की समस्याओं का शिकार बन रहा है। इस पर भी ध्यान देने की जरूरत है। सोशल मीडिया के अधिक इस्तेमाल के कारण सोशल एंग्जाइटी जैसी समस्या से युवा ग्रस्त हो रहा है। मूल्यों की प्रतिष्ठा अंतर्मन में की जा सकती है। वेद में कहा गया है– हे मानव! क्रूरता, पाशविकता, हिंसक वृतियाँ तुम्हारी उत्तम, सार्वजनिक हित और सहकारिता की भावना को नष्ट करने वाली हैं।

दूसरी तरफ, लड़कियों के शारीरिक और मानसिक क्षमता पर बुरा असर सोशल मीडिया के अधिक इस्तेमाल के कारण देखा जा रहा है। इस ओर ध्यान देना जरूरी है।

धन, समय, सहजता, चिंतन और चिंता की समस्या सोशल मीडिया ने कृतिम ढंग से पैदा की है। अभिभावकों के लिए यह नई समस्या है।

आंतकवाद, सांप्रदायिकता, नफरत, हिंसा, नई बीमारियों के चपेट में आने का डर, मांसाहार, शराबखोरी, धुम्रपान, गंदी लत और अन्य अनेक समस्याएं सोशल मीडिया के कारण तेजी के साथ बढ़ी हैं।

यदि सोशल मीडिया के नकारात्मक पक्ष को हम नदरअंदाज करते रहे तो इसके दूरगामी नकारात्मक असर से हम बच नहीं सकते। इस लिए सोशल मीडिया के अच्छे–बुरे इस्तेमाल पर जरूर गौर करना चाहिए। वरना इससे जीवन का बड़ा हिस्सा सोशल मीडिया के नाम होने का खतरा मडराता रहेगा। और जिंदगी जीने का मायने ही कहीं सोशल मीडिया के नाम न हो जाए। देखने का प्रयास करें तो, वैदिक शिक्षा की महत्ता और उपयोगिता दोनों समझ में आ जाती है।

महर्षि दयानन्द के सुविचार

धन्य हैं वे मनुष्य जो अनित्य शरीर के सुख–दुख के व्यवहार में वर्तमान होकर नित्य धर्म का त्याग कभी नहीं करते।

❖

जैसे परमात्मा ने पृथ्वी, जल,वायु, सूर्य, चन्द्र, अन्न आदि बनाए हैं वैसे ही वेद भी सबके लिए प्रकाशित किए हैं।

❖

एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाए बिना भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति होना दुश्कर है।

❖

सब मनुष्यों के लिए धर्म और अधर्म एक ही है, दो नहीं। जो कोई इसमें भेद करे तो उसको अज्ञानी और मिथ्यावादी ही समझना चाहिए।

सुपथ का पथिक

ऋषि दयानंद के सुपथ का मैं पथिक हूँ।
उनके अनेकों अनुचरो में मैं भी इक हूँ।
वेद के सिद्धांत की स्थापना में बेझिझक हूँ।
दीप हूँ, घन तिमिर में जलता अधिक हूँ ।।

हो किसी भी रूप में पाखण्ड मैं खण्डन करूंगा।
वेद मत में दीक्षितों की नीति का मण्डन करूंगा।
जो सुबह को शाम कहते,अब ना अभिनंदन करूंगा।
विश्वहित जो है समर्पित मैं उन्हें वंदन करूंगा।।

यह वेद का सिद्धांत, ईश्वर एक है, निराकार है।
उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का बस वही आधार है।
निज कर्मफल के भोग हित ही जीव का व्यापार है।
सर्वज्ञ, सर्व समर्थ प्रभु, लेता नहीं अवतार है।।

वेदोक्त है कि ओम प्रभु का मुख्य और निज नाम है।
वह एकरस है, पूर्ण है, आनन्दघन, निष्काम है।
पर्याय दुख का नर्क है,और स्वर्ग सुख का नाम है।
बिन ज्ञान कर्म व भक्ति के मिलता ना उसका धाम है।।

पंच यज्ञों का यथाविधि कृत्य भी अनिवार्य है।
हो लोक या परलोक दोनों साधता शुभ कार्य है।
जो चले इस मार्ग पर, निश्चय ही सच्चा आर्य है।
यह धर्म वैदिक है सनातन, इसलिए स्वीकार्य है।।

– **वेदकुमार दीक्षित**
देवास (म.प्र.)

आर्य लेखक परिषद् पत्रिका और आर्य लेखक परिषद् की वेबसाइट के लिए आर्य लेखक बन्धु अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजे।

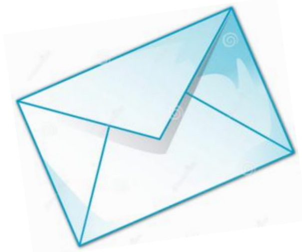

पाती आई है...

लीक से हटकर एक नया प्रयोग जैसा –

सोशल मीडिया के माध्यम से 'आर्ष क्रान्ति' पढ़ने को मिली। प्रवेशांक को देखकर मुझे लगा यह आर्य जगत् में 'एक नया प्रयोग' जैसा है। परम्परा और पुनरावृति से हटकर जब नया पढ़ने को मिले तो निश्चित ही मन को सुकून मिलता है। सभी लेख, सम्पादकीय और कविताएं पठनीय और प्रेरक हैं। मैं सम्पादक मंडल को खुश करने के लिए नहीं लिख रहा हूं बल्कि यह यथार्थ है। मेरी शुभकामना स्वीकार करें। आर्ष क्रान्ति जिस उद्देश्य से आर्य लेखक परिषद् के माध्यम प्रारम्भ किया है मेरा विश्वास है, उसमें अवश्य सफल होंगे।

सद्भावी– **डॉ. ओम प्रकाश होलिकर, लातूर (महाराष्ट्र)**

आदरणीय महोदय,

आर्ष क्रान्ति पत्रिका के प्रथम अंक की पी.डी.एफ प्राप्त हुई धन्यवाद। अंक अत्यंत आकर्षक, रोचक व ज्ञानवर्धक है। पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख वैदिक समाज व्यवस्था के लिए पूर्णरूपेण समर्पित हैं। निःसंदेह आर्ष क्रान्ति पत्रिका वैदिक संस्कृति को बचाने व उसके फलीभूत होने में मील का पत्थर साबित होंगी। पत्रिका के कुशल संपादन हेतु आपको तथा आपकी पूरी टीम को बधाई।

मुझे उम्मीद ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आर्ष क्रान्ति पत्रिका आगामी अंक और भी रोचक, प्रेरणादायी तथा क्रान्ति लेन वाला होगा। आगामी अंको में पृष्ठ संख्या ४०–५० के आस–पास हो तो सोने पे सुहागा होगा ।

अभिवेदन सहित ,
सुरेश कुमार कुशवाह
चिरॉंव,कोरांव ,प्रयागराज (उ.प्र.)

पत्रिका अच्छी बनी है। विषयों में विविधता है और उत्तम विभाजन है। सामग्री सकारात्मक है। प्रथम अंक के लिए बधाईय आगामी अगणित अंकों के लिए शुभकामनाएँ!

– **रूप चंद्र 'दीपक'** लखनऊ (उ.प्र.)

आर्ष दिग्दर्शन कराने को, ये उदय हुई अरुणाई है।
आर्यों कलुष मिटाने को, ये आर्ष क्रान्ति आई है।

अति सारगर्भित व सौद्देश्यपूर्ण आर्ष क्रान्ति का प्रथम अंक के प्रकाशन पर पूज्य आचार्य वेदप्रिय शास्त्री जी व समस्त सम्पादक मण्डल को बधाई। आपके प्रयास स्तुत्य हैं। **– योगेंद्र आर्य** कोटा (राजस्थान)

आर्ष क्रान्ति पत्रिका का प्रथम अंक पाकर हर्ष हुआ। आप अत्यंत श्रेष्ठ कार्य कर रहे हैं। पत्रिका में बहुत उपयोगी और ज्ञानवर्धक सामग्री है। इस पर आपने बहुत परिश्रम किया है ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। इसके लिए आपको हार्दिक साधुवाद। – विजय कुमार सिंघल

आर्ष क्रांति पर मेरे समीक्षात्मक विचार

कोरी कल्पनाओं और राजनीति के प्रभाव से जिस प्रकार आज समाज दिग्भ्रमित हो रहा है ऐसे में 'आर्य लेखक परिषद्' द्वारा प्रकाशित 'आर्ष क्रान्ति' अंधेरे में एक मशाल का कार्य करने में सक्षम है। इसका प्रथम अंक ही बेहद आकर्षक और ज्ञान का स्रोत है। जो लोग पढ़ने में रुचि रखते हैं उन्हें पठन योग्य ऐसी सामग्री नहीं उपलब्ध हो पाती जो उनका सही मायने में ज्ञानवर्धन और पथ–प्रदर्शन कर सकें। वेदों में उपलब्ध ज्ञान का तो बहुधा विकृत रूप ही प्राप्य होता है। 'आर्ष क्रान्ति' का प्रथम अंक पढ़कर एक आशा जागी है कि संभवतः इस पत्रिका से हमें बहुत कुछ ऐसा प्राप्त होगा जिससे हमारे वेदों में निहित ज्ञान सही रूप में हम तक पहुँचेगा।

पत्रिका का **सम्पादकीय** (आ० वेदप्रिय शास्त्री द्वारा लिखित) ही इतना रोचक और प्रभावी है कि पाठक स्वतः आगे पढ़ने को बाध्य होता है।

समाज का सर्वांगीण विकास कैसे हो? शीर्षक ही इसका समाज के प्रति चिंतनशील दृष्टिकोण इंगित करता है, इस लेख में लेखक ने प्राचीन काल में भारतीय समाज के संगठन का आधार तत्पश्चात् उसमें परिवर्तन का समय व आधार, ऋषि दयानंद का प्रादुर्भाव और उनकी मान्यताओं का संतुलित वर्णन किया है।

नास्तिक कौन शीर्षक के अन्तर्गत श्री संत समीर जी द्वारा 'नास्तिक' शब्द के प्रचलित अर्थ से हटकर जिस गूढ़ अर्थ का विवेचनात्मक वर्णन किया गया है वह निःसंदेह पाठक को एक सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में सकारात्मक भूमिका का निर्वहन करेगा।

श्री अखिलेश आर्येन्दु जी का लेख **पर्यावरण की समस्या और उसका वैदिक समाधान** हमें न सिर्फ वर्तमान समस्या के प्रति जागरूक करता है बल्कि उसका बेहद प्रभावी और वैज्ञानिक दृष्टि से प्रमाणित समाधान भी बताता है।

दयानन्द की क्रान्ति शेष है के माध्यम से भारत को पुनः विश्वगुरु बनाने का मार्ग भी दिखाया गया है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का वास होता है और जब व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ होगा तभी वह स्वस्थ समाज के निर्माण में सकारात्मक भूमिका का निर्वहन कर सकता है, इसी बात को ध्यान में रखते हुए '**योग क्रांति**' शीर्षक में योग व उसके लाभ का वर्णन इसे और प्रभावी बनाता है।

पत्रिका का उद्देश्य वृहद् और प्रशंसनीय है, अतः उद्देश्य पूर्ति के लिए अधिकाधिक लोगों का इससे जुड़ना आवश्यक है इसके लिए इसके प्रचार–प्रसार के माध्यम और उसकी रोचकता पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है साथ ही अन्य सामयिक लेख, कविता, कहानी तथा अन्य साहित्यिक विधाओं का आमंत्रण और प्रकाशन निश्चय ही इसकी गति को तीव्रता प्रदान करने में सहायक सिद्ध हो सकता है। पत्रिका से जुड़े सदस्यों का भी समय–समय पर सचित्र संक्षिप्त परिचय देना लोगों को आकर्षित कर सकता है।

कामना करती हूँ कि निकट भविष्य में आर्य लेखक परिषद् का यह महान उद्देश्य (महर्षि दयानंद और वेद को विश्व स्तर पर प्रतिष्ठित करना) पूर्ण हो।

सद्भावी – मालती मिश्रा 'मयंती'

वर्तमान परिप्रेक्ष्य को अभिलक्षित उद्देश्य के अनुकूल पत्रिका के प्रथम अङ्क का स्वागत एवं बहुत बहुत बधाई।
– प्रीति विमर्शिनी